बनावे। तीनों पात्रों में से प्रत्येक के समीप 'सर्वभूतानि इहागच्छ इह तिष्ठ' कहकर आवाहित स्थापित करे। 'ॐ सर्वभूतेभ्यो नमः' कहकर गन्धादि से पूजा करे। 'सर्वभूतबलिद्रव्याय नमः' कहकर बलि द्रव्य की पूजा करे। हाथ में जल लेकर बायें हाथ से बलि पात्र को छूकर कहे—ॐ सर्वभूतेभ्यः एष बलिर्नमः। बलि पात्र पर जल छोड़कर बलि प्रदान करे।

इसी प्रकार विष्णुपात्र शिवपात्र चतुष्क के समीप बलि प्रदान करे। तीनों सन्ध्याओं में बलि प्रदान करे। मण्डल के चारो ओर बलि प्रदान करे। किसी का मत है कि गुरु के उपदेशानुसार कार्य करे। दूसरे दिन पितरों को तिल-तण्डुल से पूर्वोक्त रीति से तीन सन्ध्याओं में बलि प्रदान करे। चौथे दिन नागों को बलि नारियल जल से सक्तुपिष्ठ बनाकर प्रदान करे। पाँचवें दिन कमल और अक्षत की बलि ब्रह्मा को प्रदान करे। छठे दिन पुआ और भात की बलि शिव को प्रदान करे। सातवें दिन विष्णु को गुड़-भात की बलि प्रदान करे। नवरात्र पक्ष में आठवें दिन विष्णु को दूध-भात की बलि देवे। नवें दिन खिचड़ी की बलि प्रदान करे। प्रथम दिन की बलि-विधान से ही सभी दिनों में बलि प्रदान करे। देवताओं के नाम से पूजन बलि प्रदान करे। इन नवों दिनों में प्रतिदिन देवता की बलि के बाद दश दिक्पालों को भी बलि प्रदान करे। बलि मन्त्र ॐ इन्द्राय एष बलिर्नमः इत्यादि कहकर घी, शक्कर और पायस की बलि प्रदान करे।

दीक्षाकाले मासाः

अथ दीक्षाकालः तत्रादौ मासाः। तत्र मन्थानभैरवतन्त्रे—

चैत्रे दुःखाय दीक्षा स्याद्वैशाखे सर्वसिद्धिदा। ज्यैष्ठे मृत्युप्रदा सा स्यादाषाढे बन्धुनाशिनी ॥१॥
श्रावणे वृद्धिदा नृणां नभस्ये दुःखदा मता। आश्विने सर्वसिद्धि स्यात्कार्तिके ज्ञानदायिनी ॥२॥
शुभदा मार्गशीर्षे च पौषे मेधाविनाशिनी। माघे सुवर्णलाभः स्यात्फाल्गुने सर्वसिद्धिदा ॥३॥ इति।

तथा तन्त्रान्तरे—

मधुमासे भवेद्दुःखं माधवे रत्नसञ्चयः। मरणं भवति ज्यैष्ठे आषाढे बन्धुनाशनम् ॥१॥
समृद्धिः श्रावणे नूनं भवेद्भाद्रपदे क्षयः। प्रजानामाश्विने मासे सर्वतः शुभमेव हि ॥२॥
ज्ञानं स्यात्कार्तिके सौख्यं मार्गशीर्षे भवत्यपि। पौषे ज्ञानक्षयो माघे भवेन्मेधाविवर्धनम् ॥३॥
फाल्गुनेऽपि समृद्धिः स्यान्मलमासं परित्यजेत्। इति।

ददन्मन्त्रं लभेन्मन्त्री दारिद्र्यं सप्तजन्मसु।

इति शिवयामलवचनादाश्विनमासो दीक्षायां विहितोऽपि निषिद्धः। महाबलचतुर्दशी शिवरात्रिः। तथा श्रीकण्ठसंहितायाम्—

शरत्काले च वैशाखे दीक्षा श्रेष्ठफलप्रदा। मार्गफाल्गुनके श्रेष्ठा ज्यैष्ठे चैव तु माघमा ॥१॥
माघमासे तु शुभदा दुष्टा साषाढमासके। आनन्ददा श्रावणे सा पौषे भाद्रे च निन्दिता ॥२॥ इति।

तथा च ज्ञानार्णवे—'शुक्लपक्षे शुभदिने शुभवारे वरानने। मन्त्राद्यारम्भणं कुर्यात्' इति। तथा कालोत्तरे—'मुक्तिकामैः कृष्णपक्षे भूमिकामैः सिते तथा। दीक्षा कार्या महादेवि' इति। तथा शैवागमे—

शुक्लपक्षे प्रकुर्वीत कृष्णे वा देशिकोत्तमः। शुक्ले सर्वसमृद्धिः स्यात्कृष्णे मध्यमतो भवेत् ॥१॥ इति।

दीक्षाकाल में मासविचार—मन्थानभैरव तन्त्र में कहा गया है कि चैत्र मास में दीक्षा लेने वाला मनुष्य दुःखी होता है। वैशाख में दीक्षा से सभी सिद्धियाँ मिलती हैं। ज्येष्ठ की दीक्षा मृत्युप्रदा होती है। आषाढ़ में दीक्षा से बन्धु का नाश होता है। श्रावण की दीक्षा वृद्धि करती है। भादो की दीक्षा दुःखदा होती है। आश्विन की दीक्षा सर्वसिद्धिदा होती है। कार्तिक की दीक्षा ज्ञानदायिनी होती है। अगहन की दीक्षा से शुभ होता है। पौष मास की दीक्षा से मेधा का नाश होता है। माघ में दीक्षा से स्वर्णलाभ होता है। फाल्गुन की दीक्षा सभी सिद्धियों को देने वाली होती है।

तन्त्रान्तर मे कहा गया है कि चैत्र में दीक्षा लेने से दुःख होता है। वैशाख में रत्नों की प्राप्ति होती है। ज्येष्ठ मे मरण होता है। आषाढ़ी दीक्षा से बन्धु का नाश होता है। श्रावण मे दीक्षा से समृद्धि मिलती है। भादो मे दीक्षा से धननाश होता है। आश्विन मास की दीक्षा सभी प्रकार से शुभ होती है। कार्तिक की दीक्षा से ज्ञान, मार्गशीर्ष की दीक्षा से सौख्य होता है। पौष की दीक्षा से ज्ञान का क्षय और माघ की दीक्षा से मेधावर्द्धन होता है। फाल्गुन की दीक्षा से समृद्धि होती है। मलमास में दीक्षा वर्जित है, क्योंकि इससे सात जन्मों में भी मन्त्रसिद्धि नहीं होती। शिवयामल के अनुसार आश्विन मास में दीक्षा विहित होने पर भी निषिद्ध है। शिवरात्रि चतुर्दशी मे महाबल मिलता है। शरत्काल और वैशाख की दीक्षा श्रेष्ठ फल देने वाली होती है। अगहन-फाल्गुन की दीक्षा श्रेष्ठ और ज्येष्ठ की अधम होती है। माघ मास की दीक्षा शुभदा एवं आषाढ़ मास की दुष्टा होती है। श्रावण मास की दीक्षा आनन्ददायिनी होती है एवं पौष-भाद्र की दीक्षा निन्दनीय है। ज्ञानार्णव के अनुसार शुक्ल पक्ष, शुभ दिन एवं शुभ वार में मन्त्रानुष्ठान का आरम्भ करना चाहिये। कालोत्तर में कहा गया है कि मुक्ति की कामना से कृष्ण पक्ष में और भूमिलाभ के लिये शुक्ल पक्ष मे दीक्षा लेनी चाहिये। शैवागम के अनुसार देशिक शुक्ल या कृष्ण पक्ष मे दीक्षा दे सकता है। शुक्ल पक्ष मे सर्वसमृद्धि और कृष्ण में मध्यम होती है।

दीक्षानक्षत्राणि

अथ नक्षत्राणि चिन्तामणौ—

अश्विनी रोहिणी चार्द्रा तथा पुष्योत्तरात्रयम्। हस्तचित्रास्वातिमैत्रविशाखाश्च धनिष्ठया ॥१॥
पुनर्वसू रेवती च दीक्षायामुत्तमा मता। इति।

मैत्रमनूराधा। तथा कामधेनौ—

रोहिणी मृगशीर्षं च तथा पुष्यश्च हस्तकः। स्वातीराधे रेवती च तथा चाप्युत्तरात्रयम् ॥१॥
शुभान्येतानि दीक्षायां नक्षत्राणि वरानने। इति।

नक्षत्र-विचार—चिन्तामणि में कहा गया है कि अश्विनी, रोहिणी, आर्द्रा, पुष्य, तीनों उत्तरा, हस्त, चित्रा, स्वाती, अनुराधा, विशाखा, धनिष्ठा, पुनर्वसु और रेवती दीक्षा के लिये उत्तम नक्षत्र कहे गये हैं।

कामधेनु में कहा है कि रोहिणी, मृगसिरा, पुष्य, हस्त, स्वाती, अनुराधा, रेवती और तीनों उत्तरा दीक्षा के लिये शुभ नक्षत्र है।

दीक्षायां निषिद्धनक्षत्राणि

अथ निषिद्धानि पिङ्गलामते—

कृत्तिकायां मनस्तापो भरण्यां च महापदः। पूर्वायां दण्डयेद्राजा मघायां मृत्युमादिशेत् ॥१॥
मूलेन कलहं विद्याज्ज्येष्ठा भवति हानिदा। पूर्वाषाढे भयं प्रोक्तं श्रवणेऽनेकरोगदा ॥२॥
शतभिषायां क्षोभदा सन्तापं भाद्रपदा भवेत्। इति।

दीक्षा में निषिद्ध नक्षत्र—पिंगला के अनुसार कृत्तिका मे दीक्षा से मनस्ताप, भरणी में महा आपद, पूर्वा में दीक्षा से राजदण्ड प्राप्त होता है। मघा में मृत्यु होती है। मूल मे कलह होता है। ज्येष्ठा से हानि होती है। पूर्वाषाढ़ा की दीक्षा से भय होता है। श्रवण में दीक्षा से अनेक रोग होते हैं। शतभिषा मे दीक्षा लेने से क्षोभ होता है। भाद्रपदा मे सन्ताप होता है।

दीक्षातिथयः

अथ तिथयः—

पूर्णिमा पञ्चमी चैव द्वितीया सप्तमी तथा। त्रयोदशी च दशमी प्रशस्ता सर्वकामदा ॥१॥ इति।

तथा श्रीकण्ठसंहितायाम्—

द्वितीया सप्तमी श्रेष्ठा षष्ठी सर्वत्र निन्दिता। द्वादश्यामपि कर्तव्यं त्रयोदश्यामथापि वा ॥१॥ इति।

विजयमालिनीतन्त्रे—

पञ्चम्येकादशी शुक्ला सप्तमी च त्रयोदशी। दशमी शुक्लपक्षस्य द्वादशी च विशेषतः ॥१॥ इति।

रत्नसागरे—

तृतीया विहिता नित्यं षष्ठी सर्वत्र निन्दिता। सप्तम्यां धनलाभः स्यादष्टम्यां गुरुनाशनम् ॥१॥
नवम्यामृक्थनाशः स्याद्दशमी सुखदायिनी। एकादश्यां भवेल्लाभो धनस्य वृषभस्य च ॥२॥
द्वादश्यां धनलाभः स्यात्त्रयोदश्यां सदोदयः। शिष्यहानिश्चतुर्दश्यां पौर्णमासी तु सिद्धिदा ॥३॥
अमायां पुत्रनाशः स्यात् प्रतिपद्बुद्धिनाशिनी। इति।

तिथि-विचार—पूर्णिमा, पञ्चमी, द्वितीया, सप्तमी, त्रयोदशी, दशमी तिथियाँ दीक्षा के लिये प्रशस्त एवं सर्वकामदा कही गई हैं। श्रीकण्ठसंहिता के अनुसार दीक्षा के लिये द्वितीया एवं सप्तमी श्रेष्ठ हैं। षष्ठी सर्वत्र निन्दित है। द्वादशी या त्रयोदशी में दीक्षा लेनी चाहिये। विजयमालिनी तन्त्र के अनुसार शुक्लपक्ष की पञ्चमी, एकादशी, सप्तमी, त्रयोदशी, द्वादशी दीक्षा के लिये प्रशस्त है।

रत्नसागर के अनुसार दीक्षा के लिये तृतीया विहित है। षष्ठी सर्वत्र निन्दित है। सप्तमी से धनलाभ होता है। अष्टमी में दीक्षा देने वाले गुरु की मृत्यु होती है। नवमी में दीक्षा से धन का नाश होता है। दशमी की दीक्षा से सुख मिलता है। एकादशी की दीक्षा से धन और बैल का लाभ होता है। द्वादशी की दीक्षा से धन-लाभ और त्रयोदशी की दीक्षा से सदैव उदय होता है। चतुर्दशी की दीक्षा से शिष्य को हानि होती है। पूर्णिमा की दीक्षा सिद्धिदा होती है। अमावस्या की दीक्षा से पुत्रनाश होता है। प्रतिपदा की दीक्षा से बुद्धिनाश होता है।

अथ देवताविशेषे तिथिविशेषः। कालोत्तरे—

ब्रह्मणः पौर्णमास्युक्ता द्वादशी चक्रधारिणः। चतुर्दशी शिवस्योक्ता वाचः प्रोक्ता त्रयोदशी ॥१॥
द्वितीया तु श्रियः प्रोक्ता पार्वत्याश्च तृतीयका। चतुर्थी गणनाथस्य भानोः प्रोक्ता तु सप्तमी ॥२॥ इति।

देवताविशेष की दीक्षा में तिथि-विशेष—कालोत्तर के अनुसार पूर्णमासी में ब्रह्मा, द्वादशी में विष्णु, चतुर्दशी में शिव, त्रयोदशी में सरस्वती, द्वितीया में लक्ष्मी, तृतीया में पार्वती, चतुर्थी में गणेश और सप्तमी में सूर्यमन्त्र की दीक्षा प्रशस्त होती है।

दीक्षावारादिकम्

अथ वासराणि तत्र मन्त्रसद्भावे—

मन्त्रारम्भो रवौ शुक्ले बुधे जीवे विशेषतः। शनौ मृत्युः क्षयं भौमे सोमे सर्वत्र निष्फलम् ॥१॥ इति।

उत्तरतन्त्रे—

रवौ गुरौ बुधे शुक्रे कर्तव्यं परमेश्वरि। इति ज्ञात्वा वरारोहे मन्त्रं दद्याद्विचक्षणः ॥१॥ इति।

विजयमालिनीतन्त्रे—

रवौ बुद्धिमवाप्नोति शुक्रे चैव धनागमम्। बुधेऽभियोगरहिता गुरौ पुत्रान्वितो भवेत् ॥१॥
शन्यङ्गारकयोर्मृत्युरविद्या सोमके भवेत्। इति ज्ञात्वा वरारोहे दीक्षां दद्याद्विशालधीः ॥२॥ इति।

वासर-विचार—मन्त्रसद्भाव के अनुसार शुक्ल पक्ष के रविवार में, बुध और गुरुवार में मन्त्रारम्भ उत्तम होता है। शनिवार से मृत्यु, मंगल से क्षय और सोमवार से मन्त्रारम्भ निष्फल होता है।

उत्तरतन्त्र के अनुसार रविवार, गुरुवार, बुधवार, शुक्रवार में मन्त्रारम्भ श्रेष्ठ कहा गया है। इसे जानकर ही बुद्धिमान को मन्त्रदीक्षा देनी चाहिये।

विजयमालिनी तन्त्र के अनुसार रविवार में दीक्षा से बुद्धि प्राप्त होती है। शुक्रवार से धनागम होता है। बुधवार की दीक्षा से अभियोगरहित होता है। गुरुवार की दीक्षा से पुत्रवान होता है। शनिवार मंगलवार को दीक्षा से मृत्यु होती है। सोम से विद्या होती है, यह जानकर दीक्षा देनी चाहिये।

दीक्षायोग:

अथ योगास्तन्त्ररत्नावल्याम्—

योगाश्च प्रीतिरायुष्मान्सौभाग्य: शोभनस्तथा। सुकर्मा च धृतिर्वृद्धिर्ध्रुव: सिद्धिश्च हर्षण: ॥१॥
वरीयांश्च शिव: सिद्धो ब्रह्म ऐन्द्रश्च षोडश:। इति।

तथात्र योगास्तत्र वसिष्ठ:—

पूर्वाषाढां प्रतिपदं पञ्चमीं कृत्तिकामथ। पूर्वाभाद्रपदा षष्ठी दशमी रोहिणी तथा ॥१॥
द्वादश्यां सर्पनक्षत्रमार्यम्णं च त्रयोदशी। नक्षत्रलुम्पा इत्येते देवानामपि नाशदा: ॥२॥ इति।
सर्पनक्षत्रमश्लेषा। उत्तराफाल्गुनी आर्यम्णम्।

दीक्षा में योगविचार—तन्त्ररत्नावली के अनुसार प्रीति, आयुष्मान, सौभाग्य, शोभन, सुकर्मा, धृति, वृद्धि, ध्रुव, सिद्धि, हर्षण, वरीयान, शिव, सिद्ध, ब्रह्म और ऐन्द्र सोलह योग दीक्षा में प्रशस्त कहे गये हैं। वसिष्ठ संहिता के अनुसार पूर्वाषाढ़ा, प्रतिपदा, पञ्चमी, कृत्तिका, षष्ठी, पूर्वाभाद्र, दशमी, रोहिणी, द्वादशी, सर्पनक्षत्र उत्तराफाल्गुनी, त्रयोदशी, नक्षत्रलुम्पा—ये सभी देवताओं के लिये भी विनाशकारक हैं। सर्पनक्षत्र आश्लेषा को कहते हैं।

दीक्षाकरणानि

अथ ज्योतिषशास्त्रे करणानि—

शुभानि करणान्याहुर्दीक्षायां तु विशेषत:। शकुन्यादीनि विष्टिं च विशेषेण विवर्जयेत् ॥१॥ इति।
अत्रादिपदेन किंस्तुघ्नचतुष्पदनागानां ग्रहणम्।

करणविचार—शकुनि, किंस्तुघ्न एवं विष्टि के अतिरिक्त सभी करण दीक्षा में शुभ कहे गये हैं।

दीक्षालग्नानि

अथ लग्नानि तन्त्रान्तरे—

मन्त्राद्यारम्भणं मेषे धनधान्यप्रदं भवेत्। वृषे मरणमाप्नोति मिथुनेऽपत्यनाशनम् ॥१॥
कर्कटे सर्वसिद्धि: स्यात्सिंहे मेधाविनाशनम्। कन्या लक्ष्मीप्रदा नित्यं तुलायां सर्वसिद्धय: ॥२॥
वृश्चिके सर्वसिद्धि: स्याद्धनुर्ज्ञानविनाशनम्। मकर: पुत्रद: प्रोक्त: कुम्भो धनसमृद्धिद: ॥३॥
मीनो दु:खप्रदो नित्यमेवं राशिफलं प्रिये। इति।

तथा च रुद्रयामले—

मीने सिंहे तथा चापे वृषे हानि: प्रजायते। मेषे सर्वसमृद्धि: स्यात्कन्या रत्नप्रदा भवेत् ॥१॥
तुलायां धनधान्यं स्याद्वृश्चिके सर्वसिद्धय:। मकरे पुत्रलाभ: स्यात्कुम्भे पशुसमृद्धय: ॥२॥
मिथुने पशुनाश: स्यात् कर्कटी राज्यदो मत:। एवं लग्नफलं ज्ञात्वा मन्त्रं दद्याद्विशालधी: ॥३॥
वृषमीनं तथा चापं सिंहलग्नं विवर्जयेत्। सुखदं शुभदं नित्यं कन्याद्यं सर्वसिद्धिदम् ॥४॥ इति।

लग्न-विचार—तन्त्रान्तर में कहा गया है कि मेष की दीक्षा धन-धान्यप्रद है। वृष से मृत्यु और मिथुन से सन्तान का नाश, कर्क से सर्वसिद्धिलाभ, सिंह से मेधा का विनाश होता है। कन्या से लक्ष्मी-प्राप्ति एवं तुला से सभी सिद्धियाँ मिलती हैं। वृश्चिक में सर्वसिद्धिलाभ, धनु में ज्ञान का नाश होता है। मकर पुत्रद एवं कुम्भ धन-समृद्धिदायक होता है। मीन की दीक्षा

से दुःख होता है। रुद्रयामल के अनुसार मीन-सिंह-धनु-वृष लग्न हानिकारक हैं। मेष से समृद्धि एवं कन्या से रत्नलाभ होता है। तुला से धन-धान्य एवं वृश्चिक से सर्वसिद्धि-लाभ होता है। मकर से पुत्रलाभ एवं कुम्भ से समृद्धि तथा पशुलाभ होता है। मिथुन से पशु-नाश होता है। कर्क राज्यप्रद है। इस प्रकार लग्न को जानकर विद्वान् मन्त्र-दीक्षा प्रदान करे। वृष, मीन, धनु, सिंह लग्न में दीक्षा न दे। कन्यादि सुखद, शुभद एवं सर्वसिद्धिप्रद है।

अथ दीक्षालग्नात् स्थानविशेषेषु स्थितानां ग्रहाणां शुभाशुभफलानि—

त्रिषडायगताः पापाः शुभाः केन्द्रत्रिकोणगाः । दीक्षायां तु शुभाः सर्वे रन्ध्रस्थाः सर्वनाशकाः ॥१॥ इति।

आयः एकादशस्थानम्। लग्नचतुर्थसप्तमदशमस्थानानां केन्द्रसंज्ञा। पञ्चमनवमस्थानयोस्त्रिकोणसंज्ञा। सूर्यशनिराहुकेतुकुजाः पापयुतो बुधः क्षीणशशी च पापाः। गुरुभृगुसुतपापरहितबुधपूर्णचन्द्राः शुभाः। रन्ध्रमष्टमस्थानम्। सर्वे नवग्रहा अपि।

अथ चन्द्रफलम्—'जन्मत्रिषट्सप्तैकादशपंक्तिगः शशी शुभफलप्रदो मतः। नेत्रद्वादशवसुपञ्चवेदग्रहराशिगः शशी दुष्टः स्मृतः'।

लग्न से स्थानस्थिति से ग्रह के शुभ-अशुभ फल—लग्न से तीसरे, छठे और ग्यारहवें में स्थित पापग्रह अशुभ होते हैं। लग्न से चौथे, सातवें, दशवें, पाँचवें, नवें स्थान में स्थित ग्रह शुभ होते हैं। अष्टमस्थ सर्वविनाशक होते हैं। सूर्य, शनि, राहु, केतु, पापयुत बुध, क्षीण चन्द्र पाप ग्रह होते हैं। गुरु, शुक्र, पापरहित बुध, पूर्ण चन्द्र शुभ होते हैं। रन्ध्र अष्टम स्थान है। चन्द्रफल—लग्न, तृतीय, षष्ठ, सप्त, एकादश का चन्द्रमा शुभ फलप्रद होता है। द्वितीय, द्वादश, अष्टम, पञ्चम, चतुर्थ, नवम स्थान का चन्द्र दुष्ट होता है।

दीक्षाकालः

अथ दीक्षायां कालः, तत्र शैवागमे—

अधोमुखे शुभे भे च चन्द्रशुद्धौ विशेषतः । कृष्णे ताराबलं कुर्यात्स्वनामादिविचिन्तनम् ॥१॥
धर्मदः प्रातःकालः स्यात्सङ्गवो राज्यदः स्मृतः । मध्याह्ने सर्वसिद्धिः स्यात्सायाह्ने सर्वतो भवेत् ॥२॥
रजनी मन्त्रदाने तु निषिद्धा देशिकोत्तमैः । दिवा सर्वं प्रकुर्वीत सिद्धिदं परमं स्मृतम् ॥३॥

दीक्षाकाल—शैवागम के अनुसार अधोमुख शुभ नक्षत्र, चन्द्र शुद्धि कृष्णपक्ष को, ताराबल का विचार अपने नाम से करके दीक्षा का समय निर्धारित करे। प्रातःकाल की दीक्षा से धर्म और षडङ्ग राज्यलाभ होता है। मध्याह्न की दीक्षा से सर्वसिद्धि और सायाह्न की दीक्षा से सर्वत्र लाभ होता है। रात में दीक्षा निषिद्ध है। दिन में दीक्षा से सिद्धि मिलती है।

अधोमुखनक्षत्राणि

अधोमुखनक्षत्राणि तु—

मूलाग्नेयमघाद्विदैवभरणीसार्पाणि पूर्वात्रयं ज्योतिर्विद्भिरधोमुखं हि नवकं भानामिदं कीर्तितम् ।
वापीकूपतडागगर्तपरिखाखातो निधेरुद्धृतिः क्षेपो द्यूतबिलप्रवेशगणनारम्भाः प्रसिद्ध्यन्ति च ॥१॥
द्विदैवं विशाखा 'विशाखानक्षत्रस्येन्द्राग्नी देवते'ति श्रुतिः।

अधोमुख नक्षत्र—मूल, कृत्तिका, विशाखा, भरणी, आश्लेषा, मघा, पूर्वा फाल्गुनी, पूर्वाभाद्र, पूर्वाषाढा—इन नव नक्षत्रों को अधोमुख कहते हैं। इनमें क्रमशः वापी, कूप, तड़ाग, गर्त, परिखा, खात, निधिग्रहण, क्षेप, द्यूत, बिलप्रवेश कार्य सिद्ध होते हैं।

ग्रहणे दीक्षारम्भः

अथ दीक्षायाः कालविशेषस्तत्र ज्ञानार्णवे—

मन्त्राद्यारम्भणं कुर्याद्ग्रहणे चन्द्रसूर्ययोः। ग्रहणाद्देवदेवेशि कालः सप्त दिनावधि ॥१॥
पवित्रपर्व देवेशि वाममेवाशुभे दिने। कालचर्चा न कर्तव्या ग्रहणे चन्द्रसूर्ययोः ॥२॥
पुण्यतीर्थे कुरुक्षेत्रे देवीपीठचतुष्टये। इति।

तथा रत्नसागरे—
सत्तीर्थेऽर्कविधुग्रासेऽनन्तवामनपर्वणोः। मन्त्रदीक्षां प्रकुर्वाणो मासर्क्षादीन्न शोधयेत् ॥१॥ इति।

अत्र यद्यपि—
सूर्यग्रहणकाले तु नान्यदन्वेषितं भवेत्। सूर्यग्रहणकालेन समो नान्यः कदाचन ॥१॥
तत्र यद्यत्कृतं सर्वमनन्तफलदं भवेत्। न मासतिथिवारादिशोधनं सूर्यपर्वणि ॥२॥
ददातीष्टं च गृह्णीयात् तस्मिन्काले गुरोर्नरः। सिद्धिर्भवति मन्त्रस्य विनाभ्यासेन वेगतः ॥३॥
इति चिन्तामणिकालिकोद्भवयोः सूर्यग्रहणस्यैव विधायकवचनदर्शनात्।

चन्द्रग्रहे तु या दीक्षा या दीक्षा वनचारिणाम्। जनकस्य तु या दीक्षा दारिद्र्यं सप्तजन्मसु ॥१॥

इति योगिनीतन्त्रे चन्द्रग्रहे दीक्षानिषेधवचनदर्शनात् प्रागुक्तरजनीमन्त्रनिषेधवचनाच्चेति सूर्योपरागकालोऽप्युपरागसाधारणतया प्रागुक्तशिवयामलवचनेन निषिद्धत्वान्नात्यन्तं प्रशस्त इत्यवधेयम्। किन्तु—
चन्द्रसूर्यग्रहे तीर्थे सिद्धिक्षेत्रे शिवालये। मन्त्रमात्रस्य कथनमुपदेशः स उच्यते ॥१॥
इति कालिकोद्भववचनान्मन्त्रान्तरेषु विधिवद्दीक्षितानां दोषावह इति।

दीक्षाकाल में विशेष—ज्ञानार्णव में कहा गया है कि चन्द्र-सूर्यग्रहण में मन्त्रारम्भ करे। इन ग्रहणों से सात दिनों की अवधि को पवित्र काल कहा गया है। शुभ दिन में मन्त्रारम्भ करे। चन्द्र-सूर्यग्रहण, पुण्य तीर्थ, कुरुक्षेत्र और देवी पीठचतुष्टय में कालगणना नहीं होती है।

रत्नसागर में कहा गया है कि पुण्य तीर्थ, सूर्य-चन्द्र ग्रहण, अनन्त वामन पर्व में मन्त्र दीक्षा ग्रहण करनी चाहिये। इनमें मास-नक्षत्रादि का शोधन नहीं करना चाहिये। सूर्यग्रहण में अन्य किसी का भी विचार नहीं किया जाता, क्योंकि इसके समान अन्य कोई भी समय पुण्य फलप्रद नहीं है। इस समय में जो कुछ भी किया जाता है, उसका अनन्त फल प्राप्त होता है। सूर्य पर्व में मास-तिथि-वारादि का शोधन नहीं करना चाहिये। इस समय में गुरु द्वारा प्रदत्त कोई भी मन्त्र बिना अभ्यास के ही सद्यः सिद्ध होता है—इस चिन्तामणि और कालिका पुराण के वचनानुसार सूर्यग्रहण ही प्रशस्त कहा गया है। चन्द्र ग्रहण की दीक्षा, वनचारियों से दीक्षा, पिता से दीक्षा प्राप्त करने से सात जन्मों तक दरिद्रता होती है—इस प्रकार योगिनीतन्त्र में पठित होने से चन्द्र ग्रहण को दीक्षा में प्रशस्त नहीं कहा गया है।

चन्द्र-सूर्य ग्रहण, तीर्थ, सिद्ध क्षेत्र और शिवालय में मन्त्र के कथनमात्र से ही उपदेश हो जाता है—इस कालिकापुराण के मन्त्रों में अन्तर से विधिवत् दीक्षा दोषावह होती है।

क्रियावती दीक्षा

अथ क्रियावती दीक्षा, उत्तरतन्त्रे—
अथ वक्ष्यामि दीक्षाणां विधानं मन्त्रकाम्यया। याभिर्विना न लभ्यन्ते सर्वमन्त्रफलानि वै ॥१॥
आत्मलाभं ददत्येताः क्षिण्वन्ति दुरितान्यपि। तेन दीक्षा इति प्रोक्तास्तासां तत्त्वविचारकैः ॥२॥
ताश्च क्रमेण कथिताः क्रियामय्यर्णमय्यपि। कलामयी वेधमयी चतस्रो ज्ञानदाः शुभाः ॥३॥ इति।

पञ्चमीश्वरीतन्त्रे—
पुण्याहं वाचयित्वादौ ब्राह्मणैः स्वस्तिपूर्वकम्। पञ्चवाद्यनिनादैश्च वेदघोषैः सुहृद्वृतः ॥१॥

गत्वा गुरुगृहं शिष्यः प्रणम्य गुरुपादुकाम्। दत्त्वा वरणसामग्रीं सङ्कल्प्य वृणुयाद्गुरुम् ॥२॥
उच्चार्यामुकमन्त्रस्य ग्रहणाय द्विजोत्तम:। गुरुत्वेनेति सम्भाष्य त्वामहं च ततो वृणे ॥३॥
इत्युक्त्वा वृणुयाच्छिष्यो वृतोऽस्मीति ततो गुरुः। यथोचितं गुरो कर्म कुरुष्वेति वदेच्छिशुः ॥४॥
करवाणीति चोच्चार्य पञ्चवाद्यपुरःसरम्। ततः शिष्येण सहितो यायाद्यागगृहं गुरुः ॥५॥
पुण्याहवाचनं कृत्वा शिष्यो भक्तिपरायणः। हारकुण्डलकेयूरमुद्रिकाङ्गदभूषणैः ॥६॥
हेमयज्ञोपवीतैश्च मधुपर्कैर्यथाविधि। महार्घवस्त्रताम्बूलैः फलपुष्पसुगन्धकैः ॥७॥
अवित्तशाठ्यमभ्यर्च्य यथावद्वृणुयाद्गुरुम्। ऋत्विजोऽपि तथाभ्यर्च्य वृणुयादुक्तसंख्यकान् ॥८॥ इति।

क्रियावती दीक्षा—उत्तरतन्त्र में कहा गया है कि मन्त्रसिद्धि के लिये दीक्षा-विधान कहता हूँ, जिसके बिना सभी मन्त्रों के फल नहीं मिलते। विधिवत् दीक्षा से आत्मलाभ होता है, कष्टों का नाश होता है। तत्त्वविचारकों ने इसीलिये इसका नाम दीक्षा रखा है। इसलिये दीक्षा का क्रम कहता हूँ। इसमें क्रियावती, मन्त्रमयी, कलामयी और वेधमयी चारों दीक्षा से शुभ ज्ञान प्राप्त होता है। पञ्चमीश्वरी तन्त्र में कहा गया है कि पहले स्वस्तिपूर्वक पुण्याहवाचन ब्राह्मणों से कराकर पञ्चवाद्य बजाते और वेदघोष करते हुए सुहृदों के साथ गुरुगृह में जाय। शिष्य प्रणाम करके गुरु को पादुका देकर वरण सामग्री का संकल्प कराकर वरण करे। मन्त्र का नाम कहकर कहे कि इस मन्त्र को ग्रहण करने के लिये हे द्विजोत्तम! आपको मैं गुरुरूप में वरण करना चाहता हूँ। तब गुरु कहे कि मैं तुम्हें शिष्य बनाने के लिये वृत हूँ। यह कहकर गुरु शिष्य को यथोचित कर्म करने के लिये कहे। तब शिष्य 'मैं वरण करता हूँ' कहकर पञ्चवाद्य बजाते हुए शिष्यसहित यागगृह में आये। गुरु को आसन पर बैठाकर शिष्य भक्तिसहित हार-कुण्डल-केयूर-मुद्रिका-अंगद-आभूषण-सोने का जनेऊ, मधुपर्क, महार्घ वस्त्र, ताम्बूल, फल, पुष्प, गन्ध से वित्तशाठ्य छोड़कर पूजन करके गुरु का वरण करे। ऋत्विजों की संख्या बोलकर उनकी पूजा करे। तब उनका वरण करे।

मधुपर्कविधानम्

अथ मधुपर्कविधानमुक्तं डामरे—

मधुपर्कविधानं ते यथावत् कथयाम्यहम्। श्रीपर्णीवृक्षपीठानि हस्तमानानि मानतः ॥१॥
अष्टांगुलसमुच्छ्रायसहितानि समानि च। सप्तविंशतिदर्भाणां वेण्योऽग्रे ग्रन्थिभूषिताः ॥२॥
विष्टरे सर्वयज्ञेषु लक्षणं परिकीर्तितम्। सुखोष्णोदकसम्पूर्णाः पाद्यार्थे ताम्रगण्डकाः ॥३॥
शङ्खा अर्घ्यप्रदानाय गन्धपुष्पजलान्विताः। दूर्वोदकसमायुक्ताः स्थापनीयाः पृथक्पृथक् ॥४॥
कमण्डलुः सुताम्रस्य आचम्योदकपूरितः। सम्पुटा मधुपर्कार्थं कांस्या दध्यादिपूरिताः ॥५॥
महान्त्यर्घ्याणि द्रव्याणि मुद्रिकाद्यं सुभूषणम्। मयूरपत्रच्छत्राणि सोष्णीषाणि समाहरेत् ॥६॥
पादुका आहरेत्तत्र चर्मभूषणभूषिताः। अन्यत्स्मार्तं यदप्युक्तं मधुपर्कस्य पूजने ॥७॥
तत्कृत्वा फलमाप्नोति महायज्ञार्हणोपमम्। अन्येभ्यो मधुपर्कस्य विप्रेभ्यः पूजनं स्मृतम् ॥८॥
भक्त्या तद्द्विगुणं दद्यादाचार्याय सुभक्तिमान्। अन्यैर्द्विजैः समं यत्र देशिकस्य प्रपूजनम् ॥९॥
तस्मिन् यज्ञे फलं स्वल्पमनावृष्टे यथा क्षितिः। देशिकेन्द्रो विधानेन स्नात्वा निर्वर्तिताह्निकः ॥१०॥
मौनमास्थाय भूषाढ्यो गच्छेद्यागगृहं प्रति। आचार्यः पूर्वदिवसे उपवेश्य समासने ॥११॥
शिष्यं मूलेन सञ्जप्तं दद्याद्वै दन्तधावनम्। दन्तान् विशोध्य पुरतः स्थण्डिले हस्तमात्रके ॥१२॥
चतुरस्रे पूजयतत्परीक्षेत ततो गुरुः। ईशानाग्रे ज्ञानलाभः प्रागग्रे भूतिरुत्तमा ॥१३॥
आग्नेयाग्रे मनस्तापो बन्धुनाशश्च दक्षिणे। राक्षसाग्रे मृत्युभयं वारुण्यग्रे मनःशुचम् ॥१४॥
वायव्याग्रे व्यग्रता च कौवेराग्रे सुखावहम्। अमङ्गलस्थानपाते प्रायश्चित्तं समाचरेत् ॥१५॥

प्रायश्चित्तमग्रे पुरश्चरणप्रकरणे वक्ष्यते।

होते हैं। पारम्पर्य प्रवर्तक, गुरु मन्त्र आगम के जानकार समयाचार पालक की देवता भी प्रशंसा करते हैं। विरक्त गुरु भी शिव की आज्ञा से शिष्य के अधिकार के लिये कुछ काल तक जप करके मन्त्र को शिष्य को समर्पित कर दे। गुरु द्वारा समर्पित अधिकार के योग से शिष्य को परशिव का साक्षात्कार होता है। शंकर कहते हैं कि उसे शाश्वती मुक्ति मिलती है। इसलिये सभी प्रयत्न से साक्षात् परशिवोदित सम्प्रदाय का अनुगमन गुरु को करना चाहिये। भुक्ति-मुक्ति-प्रसिद्धि के लिये गुरु शिष्य की विधिवत् परीक्षा करके मन्त्र का उपदेश करे; अन्यथा मन्त्र विफल होता है। अन्याय से जो मन्त्र देता है और जो लेता है, इससे देने वाले और लेने वाले—दोनों को कुलशाप मिलता है। गुरु-शिष्य दोनों एक-दूसरे की परीक्षा न लेकर मन्त्र देते और लेते हैं तो वे पिशाच होते हैं। शास्त्र के विरुद्ध जो उपदेश देता और लेता है तो वे दोनों अनेक घोर नरकों को भोगते हैं। जो मूढ़ बुद्धि संस्काररहित उपदेश देता है, वह मन्त्र को वैसे ही विफल करता है, जैसे बालू पर धान बोने से होता है। अयोग्य में तत्त्वज्ञान कदापि नहीं ठहरता; इसलिये परीक्षा के बाद ही ज्ञान देना चाहिये; अन्यथा वह निष्फल होता है। सुशिष्य अतिभक्त शिष्य को जिस ज्ञान का उपदेश दिया जाता है, वह उपदेश उसे वैसे ही प्राप्त होता है, जैसे दूध से मक्खन प्राप्त होता है। धन की इच्छा से, भय-लोभ आदि से अयोग्य शिष्य को जो दीक्षा देता है, उसे देवता शाप देते हैं और उसका किया हुआ सब कुछ विकृत हो जाता है।

पूर्णाभिषेकविधिः

(अथ पूर्णाभिषेकविधिर्लिख्यते) उत्तरतन्त्रे—

पूर्णाभिषेकं वक्ष्यामि साधकानां शुभावहम्। विना येनाभिषेकेण साधकः पूर्णबोधताम् ॥१॥
आचार्यत्वं च नाप्नोति सद्गतिं च समीहिताम्। तस्माद् गुरुः प्रियं शिष्यं बोधयित्वाभिषेचयेत् ॥२॥
विरच्य विपुलं चक्रं मण्डपेऽतिमनोरमे। खारीतोयभृतं कुम्भं स्थापयेच्चक्रमध्यतः ॥३॥
अन्येषु कलशान् रत्नवस्त्रहेमसमन्वितान्। दलेषु विधिवत् स्थाप्य तत्रावाह्येष्टदेवताम् ॥४॥
अभ्यर्च्य मध्ये चान्येषु चाङ्गावरणदेवताः। शिष्यस्य जन्मनक्षत्रे प्राग्वत्तैरभिषेचयेत् ॥५॥
अयं पूर्णाभिषेकः स्यात्साधकाभीष्टसिद्धिदः। इति।

पूर्णाभिषेक विधि—उत्तरतन्त्र में कहा गया है कि साधकों के लिये शुभदायक पूर्णाभिषेक विधि को अब मैं कहता हूँ। इस अभिषेक के बिना साधक पूर्ण बोध नहीं प्राप्त करता। आचार्यत्व प्राप्त नहीं करता एवं सद्गति समीहित होती है। इसीलिये गुरु प्रिय शिष्य को बोध कराकर उसका अभिषेक करता है। इसके लिये मनोहर मण्डप बनाकर उसमें विपुल चक्र बनाकर चक्र में खारी तौल के बराबर जल भरने लायक कुम्भ स्थापित करे। बाहर के दलों में रत्न-वस्त्र-सोनायुक्त कलशों को स्थापित करे। उसमें इष्ट देवता का आवाहन करे। मध्य में इष्ट देवता का पूजन करे। अन्य कलशों में अंगदेवता का पूजन करे। यह पूर्णाभिषेक साधक को अभीष्ट सिद्धि प्रदान करता है।

खारीप्रमाणम्

खारीप्रमाणं तु स्कन्दपुराणे—

पलद्वयं तु प्रसृतं कुडवं द्विगुणं मतम्। चतुर्भिः कुडवैः प्रस्थमाढकं तैश्चतुर्गुणैः ॥१॥
चतुर्गुणो भवेद्द्रोणः कुम्भस्तद्द्वयतः स्मृतः। कुम्भैस्तैरष्टभिः खारी..................... ॥२॥ इति।

खारी-प्रमाण—स्कन्दपुराण में कहा गया है कि दो पल का प्रसृत एवं दो प्रसृत अर्थात् चार पल का एक कुडव होता है। चार कुडव का एक प्रस्थ होता है। चार प्रस्थ का एक आढ़क होता है एवं चार आढ़क का एक द्रोण होता है। चार द्रोण का एक कुम्भ होता है एवं आठ कुम्भ की एक खारी होती है।

दीक्षाप्रयोगः

अथ दीक्षाप्रयोगः—तत्रैवं विचार्य विहितकालेषु दीक्षादिनात् पूर्वदिने शिष्यः प्रातःस्नातः कृतनित्यक्रियः

समलंकृत: पञ्चवाद्यघोषपुर:सरं ब्राह्मणै: कृतस्वस्तिवाचन: प्रियसुहृद्भि: सार्धं स्वयं गुरुगृहं गत्वा तं विधिवत् प्रणम्य तदाज्ञया प्राणायामपुर:सरम् ॐ अद्यामुकमासेऽमुकराशिगते सवितर्यमुकपक्षेऽमुकतिथावमुकगोत्रो, ब्राह्मणश्चेदमुकशर्मा, क्षत्रियश्चेदमुकवर्मा, वैश्यश्चेदमुकगुप्त:, शूद्रश्चेदमुकदासोऽहं चतुर्विधपुरुषार्थसिद्धिकामोऽमुकमन्त्रग्रहणं करिष्ये, इति कुशहस्त: प्राङ्मुख उदङ्मुखो वा सङ्कल्पं विधाय, प्रमाणोक्तमधुपर्कसामग्रीभि: स्वशाखोक्तविधिना श्रीगुरुं मधुपर्केणाभ्यर्च्य, धौतोत्तरीयप्रच्छदपटस्वर्णाङ्गुलीयककर्णाभरणस्वर्णयज्ञोपवीतहारकेयूराङ्गदादिनानाभरणच्छत्रचामरोपानद्युगलशय्यातल्पास्तरणसम्पन्नां वरणसामग्रीं गुरुसन्निधौ निधाय, अद्येत्यादि प्राग्वत् तिथ्युल्लेखान्तेऽमुकगोत्रोऽमुकशर्मेत्यादि यथावर्णविहितमुच्चार्याहं चतुर्विधपुरुषार्थसिद्धिकामोऽमुकमन्त्रग्रहणार्थममुकगोत्रममुकवेदान्तर्गतामुकशाखाध्यायिनममुकमेभिर्यथाशक्ति विहितवरणसाधनैर्गुरुत्वेन वृणे, इति गुरुपादयो: प्रणम्य वरणसामग्रीं निवेदयेत्। ततो वृतोऽस्मीति गुरुणा प्रतिवचने दत्ते, शिष्य: कृताञ्जलिर्यथोक्तं गुरो कर्म कुरुष्वेति ब्रूयात्। ततो गुरु: करवाणीति प्रतिब्रूयात्। इत्थं गुरुवरणं विधाय तदनुज्ञयाष्टौ ब्राह्मणान् वेदवेदाङ्गपारगान् स्वेष्टदेवतोपासकान् प्रागुक्तगुरुवरणोक्तसामग्रीभिस्तथैव ऋत्विक्त्वेन वृणुयात्। चतुष्कुण्डपक्षे चत्वार एव ऋत्विज कार्या:। तत: शिष्येणैवंवृतो गुरु: कृतनित्यक्रिय: समलंकृत: पञ्चवाद्यघोषपुर:सरं ब्राह्मणै: सुहृज्जनैश्च वृत: शिष्येण सह मण्डपद्वारं गत्वा तत्र वक्ष्यमाणविधिना द्वारपूजां विधाय, तथैव भूतोत्सादनपूर्वकं मण्डपान्त: प्रविश्य, तथैव पञ्चगव्यार्घ्यतोयप्रोक्षणपूर्वकं वक्ष्यमाणवीक्षणादिचतुर्भि: संस्कारै: संस्कृतमण्डपाभ्यन्तरे चन्दनागरुकर्पूरधूपिते चन्दनसर्षपदूर्वाभस्माक्षतलाजान् अस्त्रमन्त्रेण सप्तधाभिमन्त्रितान् मण्डपान्तर्विकीर्य, अस्त्रमन्त्रेण कुशमुष्टिना सम्मार्ज्य मण्डपस्येशानकोणे संस्थाप्य, ब्राह्मणै: पुण्याहवाचनं कारयित्वा वास्तुपुरुषपूजादिकं विधाय भैरवाज्ञापुर:सरं वेदिकायामास्तीर्य वक्ष्यमाणविधिना सम्पूज्य, तत्र प्राङ्मुखोपविष्ट: स्वपुरत: सुसमे भूतले वेदिकोपरि सर्वतोभद्रमण्डलं कुर्यात्। तत्र प्राक्प्रत्यगायता दक्षिणोत्तरायताश्च सप्तदश सप्तदश रेखा: कृत्वा षट्पञ्चाशदुत्तरशतद्वयकोष्ठयुतं चतुरस्रमण्डलं कृत्वा तन्मध्यगतषट्त्रिंशत्कोष्ठान्येकीकृत्य तद्बहिश्चतुर्दिक्ष्वेकपंक्तिं परित: सम्मार्ज्यैकीकृत्य पीठं परिकल्प्य, तद्बहिश्चतुर्दिग्गतपंक्तिद्वयमेकीकृत्य सम्मार्ज्य वीथीं परिकल्प्य, सर्वमध्यगतसरोजस्थाने बहि: परित: द्वादशभागं परित्यज्य सर्वमध्यावलम्बनेन समान्तरालवृत्तत्रयं निष्पाद्य, तत्र सर्ववृत्तमध्यकर्णिकां परिकल्प्य, तद्बहिर्गतवृत्तवीथीं केसरार्थं परिकल्प्य, केसरस्थानं षोडशधा विभज्य तच्चिह्नावलम्बनेन द्वितीयतृतीयवृत्तयोरन्तरालमानसूत्रमानेन गुरूक्तयुक्त्या षोडशार्धचन्द्रान् परिकल्प्य तेनाष्टदलानि कृत्वा, तृतीयवृत्ताद्बहिस्त्यक्तैकांशतो मध्यचिह्नावलम्बनेन वृत्तान्तरं निष्पाद्य, गुरूक्तयुक्त्या पत्राग्राणि विधायैकैकदलमूले केसरद्वयं यथा दृश्यते तथा विरच्य पद्मं कृत्वा, पद्मबहिर्गतैकपंक्तिरूपचतुरस्रपीठस्य कोणचतुष्टयेऽपि कोष्ठत्रयेण कोष्ठत्रयेण पीठपादान् परिकल्प्यावशिष्टकोष्ठैरेकीभूतै: पीठगात्राणि विधाय, तद्बहिर्गतपंक्तिद्वयकोष्ठानि सम्यक् प्रमार्ज्य तद्बहिर्गतपंक्तेश्चतुर्दिक्षु मध्ये मध्ये कोष्ठद्वयं कोष्ठद्वयमेकीकृत्य सर्वबाह्यगतपंक्तेरपि चतुर्दिक्षु प्रतिदिशं कोष्ठचतुष्टयमार्जनेन द्वारचतुष्टयं परिकल्प्य, द्वारचतुष्टयस्यापि पार्श्वयो: पंक्तिद्वयगतकोष्ठेषु अन्त:पंक्ते: कोष्ठत्रयं बहि:पंक्ते: कोष्ठमेकमिति कोष्ठचतुष्टयमेकीकृत्य शोभां विधाय, तत्पार्श्वयोरप्यन्य: पंक्ते: कोष्ठमेकं बहि:पंक्ते: कोष्ठत्रयमिति कोष्ठचतुष्टयं कोष्ठचतुष्टयम् एकीकृत्योपशोभां विधायावशिष्टै: षड्भि: कोष्ठैश्चत्वारि कोणानि कल्पयेत्, इति सर्वतोभद्रमण्डलं निर्माय सरोजकर्णिकाकेसरदलाग्रपीठवीथीद्वारशोभोपशोभाकोणस्थानानि पञ्चवर्णरजोभिर्भूषयेत्।

दीक्षा-प्रयोग—दीक्षा के लिये विहित काल निश्चित करके दीक्षा-दिवस के एक दिन पहले शिष्य प्रात:काल में स्नान करके नित्य क्रिया करके समलंकृत होकर पाँच प्रकार का बाजा बजवाये। ब्राह्मणों से स्वस्तिवाचन कराये। आगे बाजा बजवाते हुए ब्राह्मण और सुहृदों के साथ स्वयं गुरुगृह जाये। गुरु को विधिवत् प्रणाम करे। गुरु की आज्ञा से प्राणायाम करके हाथ में कुश लेकर पूर्व या उत्तरमुख बैठकर संकल्प करे।

प्रमाणोक्त मधुपर्क सामग्री से मधुपर्क बनाकर गुरु का अर्चन करे। धोती, गमछा, प्रच्छद पट, सोने की अंगूठी, कर्णाभरण, सोने का जनेऊ, हार, केयूर, अंगदादि नाना आभूषण छत्र, चामर, उपानहयुगल, शय्या, तल्प, आस्तरणयुक्त वरण सामग्री गुरु के समीप रखे। मूलोक्त वरण मन्त्र कहकर गुरुचरणों में प्रणाम करके वरण सामग्री को निवेदित करे। गुरु के 'वृतोऽस्मि' कहने पर शिष्य हाथ जोड़कर—'यथोक्तं गुरुकर्म गुरुष्व' कहे। तब गुरु बोले 'करवाणि'। इस प्रकार गुरुवरण के बाद गुरु की आज्ञा से वेद-वेदाङ्गपारग स्वेष्ट देवता उपासक आठ ब्राह्मणों का वरण ऋत्विज रूप में प्रागुक्त गुरु वरणित सामग्रियों से करे। चतुष्कुण्ड पक्ष में चार ऋत्विजों का वरण करे। तब शिष्य द्वारा वृत गुरु नित्य कृत्य करके समलंकृत होकर आगे पाँच वाद्यों को बजवाते हुए ब्राह्मणों और सुहृद् से घिरे शिष्य के साथ मण्डपद्वार पर जाय। वहाँ पर वक्ष्यमाण विधि से द्वारपूजा करे। भूतोत्सादन-पूर्वक मण्डप में प्रवेश करे। पञ्चगव्य और जल से प्रोक्षण करे। वीक्षण आदि चार संस्कार करे। संस्कृत मण्डप में चन्दन, अगर, कपूर से धूपित चन्दन, सरसों, दूब, भस्म, अक्षत, लावा, अस्त्रमन्त्र से सात बार अभिमन्त्रित करके बिखेर दे। अस्त्रमन्त्र से कुशमुट्ठी से मार्जन करे। मण्डप के ईशान कोण में स्थापित करे। ब्राह्मणों से पुण्याहवाचन करावे। वास्तुपुरुष का पूजन करे। भैरवाज्ञा लेकर वेदी का आस्तरण करे। वक्ष्यमाण विधि से वेदी का पूजन करे। पूर्वमुख बैठे। अपने आगे वेदी के बराबर तल पर सर्वतोभद्र मण्डल बनावे। पूरब से पश्चिम सत्रह एवं दक्षिण से उत्तर सत्रह रेखा बराबर दूरी पर खींचकर दो सौ छप्पन कोष्ठ वाला चतुरस्र बनावे। बीच वाले छत्तीस कोष्ठों को एक कोष्ठ करे। इसके बाहर चारो दिशाओं में एक पंक्ति मिटा कर पीठ कल्पित करे। उसके बाहर चारो दिशाओं में दो-दो पंक्तियों को एक-एक करके वीथि बनाने के लिये कोष्ठों को मिटा दे।

सर्वमध्यगत कमल स्थान में सभी ओर से द्वादशांश छोड़कर सर्वमध्य के अवलम्बन से तीन वृत्त बनावे। उनमें से मध्य वृत्त में कर्णिका कल्पित करे। पहले और दूसरे वृत्त परिधि के अन्तराल में केसर कल्पित करे। केसर स्थान का सोलह भाग करे। इन चिह्नों के सहारे द्वितीय तृतीय वृत्त के अन्तराल मान से सोलह अर्धचन्द्र बनावे। उनसे अष्टदल बनावे। तृतीय वृत्त के बाहर एकांश मध्य चिह्न के अवलम्बन से वितानान्तर निष्पादित करके पत्राग्र और मूल में दो केसर-युक्त पद्म बनावे। पद्म के बाहर एक पंक्ति से निर्मित चतुरस्र पीठ के चारो कोनों के तीन-तीन कोष्ठों से पीठ की कल्पना करे। शेष कोष्ठों को एकीकृत करके पीठगात्र बनावे। उसके बाहर दो पंक्ति के कोष्ठों को सम्यक् रूप से मिटाकर उसके बाहर के पंक्ति की चारो दिशाओं के बीच-बीच में दो-दो कोष्ठों को एक करे। सबसे बाहरी पंक्ति में भी चारो दिशाओं में प्रति दिशा में चार-चार कोष्ठों का मार्जन करके चार द्वारों को कल्पित करे। चारो द्वारों के पार्श्वों में पंक्तिद्वय के कोष्ठों में भीतरी पंक्ति के तीन कोष्ठ और बाहरी पंक्ति के एक कोष्ठ—इन चार कोष्ठों को एक करके शोभा बनावे। उसके बगल की अन्य पंक्ति का एक एवं बाहरी पंक्ति के तीन कोष्ठ को मिलाकर चार कोष्ठों से उपशोभा बनावे। अवशिष्ट छः कोष्ठों से कोनों को कल्पित करे। इस प्रकार का सर्वतोभद्र मण्डल बनाकर सरोज कर्णिका केसर दलाग्र पीठ वीथि द्वारशोभा उपशोभा कोण स्थानों को पाँच रंग के चूर्णों से भूषित करे।

पञ्चवर्णरजांसि तु—हरिद्राचूर्णं पीतं रजः, तण्डुलचूर्णं शुक्लं, कुसुम्भकुसुमचूर्णं रक्तं, दग्धतण्डुलचूर्णं कृष्णं, बिल्वपत्रचूर्णं श्याममिति।

रजोविन्यासप्रकारस्तु—सीमागताः सर्वरेखाः शुक्लरजसा एकाङ्गुलोत्सेधविस्तारयुताः कार्याः। पीतरजसा कमलकर्णिकां केसराणि च सम्यक् समापूर्य, शुक्लरजसा दलानि च सम्पूर्य श्यामरजसा दलसन्धीनापूरयेत्। अथवा कर्णिकां पीतेन, केसरान् पीतरक्ताभ्यां, दलानि रक्तेन, दलसन्धीन् कृष्णेन रजसा सम्पूर्य, पीतेन कृष्णेन वा पीठगर्भमापूर्य पीठपादान् रक्तेनापूर्य, पीठगात्राणि शुभ्ररजसापूर्य, वीथीचतुष्टये कल्पवल्लीः कोरकपुष्पपल्लव-फलमण्डिता नानावर्णरजोभिरारचय्य, शुभ्रेण रजसा द्वारचतुष्कमापूर्य रक्तवर्णेन द्वारशोभाः पीतेनोपशोभाः कृष्णेन कोणानि चापूर्य, तद्बही रेखात्रयमेकैकाङ्गुलान्तरालं शुक्लरक्तकृष्णरजोभिः कुर्यादिति सर्वतोभद्रमण्डलं विधाय, वेदीपरितो दीपान् प्रज्वाल्य वक्ष्यमाणविधिना पूजाद्रव्याण्यासाद्य, तथैव तानि संस्कृत्य छत्रचामरद्वयदर्पणव्यजनादिकं च यथायथं निधाय गुर्वादिवन्दनपूर्वकं करशुद्धितालत्रयदिग्बन्धनाग्निप्राकारत्रयभूतशुद्धिप्राणप्रतिष्ठामातृकान्या-सयोगपीठन्यासमूलमन्त्रन्यासांश्च विधाय, मुद्राविरचनस्वेष्टदेवताध्यानमानसपूजान्तो वैश्वदेवमूलमन्त्रजपतत्समर्पणार्घ्य-

स्थापनान्तपूजान्तर्हवनमूलमन्त्रजपतत्समर्पणानि विधाय 'सर्वतोभद्रमण्डलाय नमः' इति मण्डलं गन्धादिपञ्चोपचारैः सम्पूज्यार्घ्यजलेन प्रोक्ष्य, तत्र वक्ष्यमाणविधिना पीठपूजां विधाय, तत्कर्णिकां शालिभिरापूर्य तण्डुलान् कुशान् दूर्वाः सप्तविंशतिभिः कुशैरेकीकृताग्रविरचितब्रह्मग्रन्थिकं कूर्चं च निधाय, तत्र वक्ष्यमाणविधिना शालिपुञ्जोपरि वह्निमण्डलं वह्निकलाश्च सम्पूज्य, तत्र स्वर्णादिनिर्मितं त्रिगुणीकृतसूत्रवेष्टितसर्वाङ्गं चन्दनागरुकर्पूरधूपधूपितं कुम्भं प्रणवमुच्चरन् संस्थाप्य, तत्र पुष्परागनीलवैदूर्यविद्रुममौक्तिकमरकतवज्रगोमेदपद्मरागाख्यानि नवरत्नानि ससुवर्णानि निक्षिप्य, कुम्भस्योपरि गन्धाक्षतदूर्वान्वितप्रागुक्तलक्षणं कूर्चं च निधाय, तत्र क्षलमित्यादिविलोममातृकान्ते मूलमन्त्रं त्रिर्जपन् आत्मनः कुम्भस्य योगपीठस्य चैक्यं भावयन् वक्ष्यमाणपञ्चाशदक्षरौषधिक्वाथैरश्वत्थोदुम्बरप्लक्षवटक्वाथैः पलाशवृक्षत्वचाक्वाथैः कर्पूरचन्दनकस्तूरीकुङ्कुमवासितैस्तीर्थजलैर्वा कुम्भमापूर्य, स्वपुरतो वक्ष्यमाणविधिना शङ्खं संस्थाप्य, कुम्भपूरितजलसजातीयजलेनापूर्य तत्र गन्धाष्टकं विलोड्य, तत्र वक्ष्यमाणवह्निकलाः सूर्यकलाः सोमकलाश्चावाह्य तासां पृथक्पृथक् प्राणप्रतिष्ठां विधाय सम्पूज्य, प्रणवोत्थैकपञ्चाशत्कलाः कलामातृकान्यासोक्ताः सम्पूज्याः। तत्र प्रथममकाराद्ब्रह्मण उत्पन्नाः कचवर्गोत्थाः सृष्ट्यादिदशकलाः समावाह्य, हंसः शुचिषदिति ऋचो वामदेव ऋषिर्जगतीच्छन्दः सूर्यो देवतेति ऋष्यादीन् स्मृत्वा 'ॐ हंसः शुचिषद्वसुरन्तरिक्षसद्धोता वेदिषदतिथिर्दुरोणसत्। नृषद्वरसदृतसद्व्योमसदब्जा गोजा ऋतजा अद्रिजा ऋतं बृहत्' इति मन्त्रमुच्चार्य 'ब्रह्मणे नमः' इति सम्पूज्य, पूर्वोक्तप्राणप्रतिष्ठामन्त्रेण ममपदस्थाने सृष्ट्यादीनामिति पदं दत्त्वा सृष्ट्यादीनां प्राणप्रतिष्ठां विधाय 'ॐ कं सृष्ट्यै नमः' इत्यादि दशकलाः सम्पूज्याः। उकाराद्विष्णोरुत्पन्नाष्टतवर्गोत्था जरादिदशकलाः समावाह्य, ॐ प्रतद्विष्णुरिति मन्त्रस्य दीर्घतमा ऋषिस्त्रिष्टुप्छन्दो विष्णुर्देवता, इति ऋष्यादिकं स्मृत्वा 'ॐ प्र तद्विष्णुः स्तवते वीर्येण मृगो न भीमः कुचरो गिरिष्ठाः। यस्योरुषु त्रिषु विक्रमणेष्वधिक्षियन्ति भुवनानि विश्वा' इति पठित्वा 'विष्णवे नमः' इति सम्पूज्य, प्राग्वज्जरादिदशकलानां प्राणप्रतिष्ठां विधाय 'ॐ टं जरायै नमः' इत्यादिदशकलाः सम्पूज्याः। मकाराद्रुद्रादुत्पन्नाः पयवर्गोत्थास्तीक्ष्णादिदशकलाः समावाह्य, ॐ त्र्यम्बकमिति मन्त्रस्य वसिष्ठ ऋषिरनुष्टुप्छन्दः त्र्यम्बकरुद्रो देवता, इति ऋष्यादिकं स्मृत्वा 'ॐ त्र्यम्बकं यजामहे सुगन्धिं पुष्टिवर्धनम्। उर्वारुकमिव बन्धनान्मृत्योर्मुक्षीय मामृतात्' इति पठित्वा 'रुद्राय नमः' इति सम्पूज्य तासां प्राणप्रतिष्ठां विधाय 'ॐ पं तीक्ष्णायै नमः' इत्यादिदशकलाः सम्पूज्याः। ईश्वराद्बिन्दोरुत्पन्नाः षकारादिक्षकारान्ताः पञ्चवर्णोत्थाः पीतादिपञ्चकला आवाह्य ऋष्यादिस्मरणपूर्वकं गायत्रीमुच्चार्य 'ईश्वराय नमः' इति सम्पूज्य, तासां प्राणप्रतिष्ठां विधाय 'ॐ षं पीतायै नमः' इत्यादिपञ्चकलाः सम्पूज्याः। ततो नादोत्थाः सदाशिवादुत्पन्नाः स्वरजा निवृत्त्याद्याः षोडशकलाः समावाह्य 'विष्णुर्योनिं कल्पयत्वि'ति मन्त्रस्य त्वष्टा गर्भकर्ता ऋषिरनुष्टुप्छन्दो विष्णुर्देवतेति ऋष्यादिकं स्मृत्वा 'ॐ विष्णुर्योनिं कल्पयतु त्वष्टा रूपाणि पिंशतु। आसिञ्चतु प्रजापतिर्धाता गर्भं दधातु ते' इति पठित्वा 'सदाशिवाय नमः' इति सम्पूज्य, तासां प्राणप्रतिष्ठां विधाय 'अं निवृत्त्यै नमः' इत्यादिषोडशकलाः सम्पूज्याः।

पाँच रंग के चूर्णों में हरिद्राचूर्ण पीला, तण्डुलचूर्ण श्वेत, कुसुम्भ कुसुमचूर्ण लाल, दग्ध तण्डुलचूर्ण काला एवं बिल्वपत्रचूर्ण नीला होता है। रजोविन्यास इस प्रकार करे—सभी रेखाओं को सीमा में एक अंगुल उच्च और एक अंगुल विस्तृत स्थान को श्वेत चूर्ण से पूर्ण करे। पीले चूर्ण से कमल कर्णिका और केसरों को सम्यक् पूरित करे। श्वेत चूर्ण से दलों को पूरित करे। दलों की सन्धियों को काले चूर्ण से पूरित करे। पीले या काले चूर्ण से पीठगर्भ को पूरित करे। पीठपादों को लाल चूर्ण से पूरित करे। पीठगात्रों को श्वेत चूर्ण से पूरित करे। वीथिचतुष्टय कल्पवल्लो के कोरक पुष्प पल्लव फलों को विविध रंग के चूर्णों से पूरित करे। श्वेत चूर्ण से चारों द्वारों को, लाल चूर्ण से द्वारशोभा को, पीले चूर्ण से उपशोभा को और काले चूर्ण से कोनों को पूरित करे। उसके बाहर तीन रेखाओं को एक-एक अंगुल की दूरी पर उजले, लाल और काले चूर्ण से पूरित करे।

सर्वतोभद्र मण्डल बनाकर वेदी के चारों ओर दीप जलावे। वक्ष्यमाण विधि से पूजाद्रव्यों को रखे। उन्हें संस्कृत करे।

छत्र, चामर, दर्पण, पंखा को यथास्थान रखे। गुरुवन्दना करके करशुद्धि करे। तीन ताली बजाकर दिग्बन्ध करे। अग्नि का तीन प्राकार बनावे। भूतशुद्धि, प्राण-प्रतिष्ठा, मातृका न्यास, यागपात्र न्यास, मूल मन्त्र न्यास करे। मुद्रा बनाकर इष्ट देवता का ध्यान करके मानस पूजन करे। वैश्वदेव, मूलमन्त्र का जप, समर्पण करे। अर्घ्य-स्थापन, आत्मपूजा, अन्तर्हवन कर मूल मन्त्र जप कर उसे समर्पित करे।

'सर्वतोभद्रमण्डलाय नमः' से गन्धादि पञ्चोपचार से मण्डल को पूजकर जल से प्रोक्षण करे। वक्ष्यमाण विधि से पीठपूजा करे। उसकी कर्णिका को धान से पूरित करके ऊपर से चावल छिड़के। सत्ताईस कुश एवं दूब को मिलाकर ब्रह्मग्रन्थि लगाकर कूर्च बनावे। वक्ष्यमाण विधि से शालिपुंज के ऊपर वह्निमण्डल और वह्निकलाओं की पूजा करे। स्वर्णादि से निर्मित कलश को तीन धागों को मिलाकर वेष्टित करे। ॐ बोलते हुए कलश में चन्दन, अगर, कपूर को धूपित करके डाल दे। तब कलश में पुष्पराग, नीलम, वैदूर्य, मूंगा, मोती, पन्ना, हीरा, गोमेद और पद्मराग—इन नवरत्नों के साथ सोना निक्षिप्त करे। कलश के मुख पर गन्धाक्षत दूर्वायुक्त कूर्च को रखे। क्षं से अं तक विलोम मातृका बोलकर मूल मन्त्र का तीन बार जप करे। अपने को, कलश को और योग पीठ को एक रूप की भावना करे। वक्ष्यमाण पचास अक्षरौषधि क्वाथ, पीपल-गूलर वट-क्वाथ-पलाश की छाल के क्वाथ, कपूर, चन्दन, कस्तूरी, कुंकुम वासित तीर्थ जल से कुम्भ को पूर्ण करे। वक्ष्यमाण विधि से अपने आगे शंखस्थापन करे। कुम्भ पूरित जल, सजातीय जल से भरे। गन्धाष्टक मिलाकर उसमें वक्ष्यमाण वह्निकला, सूर्यकला, सोमकला का आवाहन करे। उनमें अलग-अलग प्राणप्रतिष्ठा करे। पूजा करे। प्रणव से उत्पन्न पचास कला का पूजन कलामातृका न्यासोक्त अंगों से करे। उसमें प्रथम अकाररूप ब्रह्म से उत्पन्न कचवर्गोत्थ सृष्ट्यादि दश कला का आवाहन करे। हंसः शुचिषद् इस ऋचा से वामदेव ऋषि, जगती छन्द, सूर्य देवता इस प्रकार ऋष्यादि का स्मरण करे। 'ॐ हंसः शुचिषद् वसुरन्तरिक्ष सद् होता वेदिषदतिथिर्दुरोणसत्। नृषद्वरसदृत सद् व्योम सदब्जा गोजा ऋतजा अद्रिजा ऋतं बृहत्' मन्त्र कहकर 'ब्रह्मणे नमः' से पूजन करे। पूर्वोक्त प्राण प्रतिष्ठा मन्त्र से 'मम' पद के बदले सृष्ट्यादि नाम पद देकर सृष्ट्यादि की प्राणप्रतिष्ठा करे। ॐ कं सृष्ट्यै नमः' इत्यादि के रूप में दश कलाओं का पूजन करे।

उकार रूप विष्णु से उत्पन्न टतवर्गोत्थ जरादि दश कलाओं का आवाहन करे। ॐ प्रतद् विष्णुः स्तवते वीर्येण मृगो न भीमः कुचरो गिरिष्ठा। यस्योरुषु त्रिषु विक्रमणेष्वधिक्षियन्ति भुवनानि विश्वा—कहकर 'विष्णवे नमः' से पूजा करे। पूर्ववत् जरादि दश कलाओं की प्राणप्रतिष्ठा करे। 'ॐ टं जरायै नमः' इत्यादि से दश कलाओं की पूजा करे। मकार रूप रुद्र से उत्पन्न प य वर्गोत्थ तीक्ष्णादि दश कलाओं का आवाहन करे। ॐ त्र्यम्बकं मन्त्र के वसिष्ठ ऋषि, अनुष्टुप् छन्द, त्र्यम्बक रुद्र देवता इस प्रकार ऋष्यादिकों का स्मरण करे। ॐ त्र्यम्बकं यजामहे सुगन्धिं पुष्टिवर्धनम्। उर्वारुकमिव बन्धनान्मृत्योर्मुक्षीय मामृतात्—कहकर 'रुद्राय नमः' से पूजा करे। उनमें प्राणप्रतिष्ठा करके 'ॐ पं तीक्ष्णायै नमः' इत्यादि दश कलाओं की पूजा करे। ईश्वर रूप बिन्दु से उत्पन्न षकार से क्षकार तक पञ्च वर्णोत्थ पीतादि पञ्च कलाओं का आवाहन करे। ऋष्यादि का स्मरण करे। गायत्री का उच्चारण करके 'ईश्वराय नमः' से पूजा करे. उनमें प्राणप्रतिष्ठा करके 'ॐ षं पीतायै नमः' इत्यादि से पञ्च कलाओं की पूजा करे। तब नादोत्थ सदाशिव से उत्पन्न स्वरजा निवृत्ति आदि षोडश कलाओं का आवाहन करे। 'विष्णुर्योनिं कल्पयतु' मन्त्र के त्वष्टा गर्भकर्ता ऋषि, अनुष्टुप् छन्द, विष्णु देवता इस प्रकार ऋष्यादि का स्मरण करे। ॐ विष्णुर्योनिं कल्पयतु त्वष्टा रूपाणि पिंशतु। आसिञ्चतु प्रजापतिर्धाता गर्भं दधातु ते—कहकर 'सदाशिवाय नमः' से पूजा करे। उनमें प्राणप्रतिष्ठा करे। 'अं निवृत्त्यै नमः' इत्यादि रूप में षोडश कलाओं का पूजन करे।

इत्थं चतुर्नवतिदेवताः शङ्खे सम्पूज्य सकलकलामयं शङ्खजलं मूलमन्त्रेण कुम्भे संयोज्य, ततोऽश्वत्थपनसाम्र-पल्लवान् इन्द्रवारुणीलतया संवेष्ट्य कल्पवृक्षधिया कलशे निधाय, तदुपरि कलशसजातीयं तण्डुलपूर्णं नारिकेलफला-द्यकल्पवृक्षफलयुक्तं पात्रं संस्थाप्य पट्टवस्त्रयुगेन घटं संवेष्टयेदिति वेधा प्रधानकुम्भस्थापनं विधाय, पूर्वादितोरणसमीपे प्रागुक्तमण्डलेऽपि अष्टदलकमलेषु वा शालिपुञ्जोपरि प्रागुक्तविधिना प्रतिद्वारमेकमेकं संस्थाप्य, तत्र पूर्वदिग्गतकुम्भे ध्रुवं, दक्षिणे धरां, पश्चिमे वाचस्पतिमुत्तरे विघ्नेशं च सम्पूज्य, तद्वदाग्नेयादिकोणचतुष्टये कुम्भान् संस्थाप्याग्नेयकुम्भेऽमृतं,

नैर्ऋते दुर्जयं वायव्ये सिद्धार्थमीशाने मङ्गलं च सम्पूज्य, पुनः पूर्वादिकुम्भेष्विन्द्रादि-लोकपालानावाह्य वेदोक्ततत्तन्मन्त्रेण सम्पूज्य पुनः पूर्वाद्यष्टदिक्षु कुम्भाद्बहिः 'ऐरावत पुण्डरीकं वामनं कुमुदाञ्जनौ। पुष्पदन्तं सार्वभौमं सुप्रतीकं च पूजयेत्' इति दिग्गजान् सम्पूज्य, पुनर्गुरुर्वेद्यां गत्वा स्वासने समुपवेश्य स्वेष्टमन्त्रेण प्राणायामत्रयं कृत्वा, तस्य मन्त्रस्य-र्ष्यादिकरषडङ्गन्यासपूर्वकं सकलन्यासजालं विधाय देवतां ध्यात्वा मानसैरुपचारैः सम्पूज्य, प्रधानकुम्भे वक्ष्यमाणप्रकारेण मूर्तिं परिकल्प्य, तत्र स्वेष्टदेवतामावाह्य वक्ष्यमाणप्रकारेण षोडशोपचारैः साङ्गावरणं तत्तत्कल्पोक्तविधिना सम्पूज्य, वेद्या दक्षिणभागे हस्तमात्रायामविस्तारमङ्गुष्ठापर्वमात्रोच्चं वालुकाभिः समचतुरस्रं स्थण्डिलं कृत्वा वक्ष्यमाणनित्य-होमप्रोक्तविधिना वह्निं संस्थाप्य चरुं श्रपयित्वा तत्र देवतामावाह्य सम्पूज्य, नित्यहोमोक्तविधिना साज्येन तेन चरुद्रव्येण हुत्वा, पुनर्देवं सम्पूज्य कुम्भस्थमूर्तौ संयोज्य तथैव वह्निं सम्पूज्य विसृज्य वक्ष्यमाणविधिना सर्वभूतबलिं तत्तत्कल्पोक्तबलिदानं च विधाय, देवायोत्तरापोशनादिनीराजनान्तं नित्यपूजोक्तविधिना विधाय, प्राणायामत्रयऋष्यादिकर-षडङ्गन्यासपूर्वकं मूलमन्त्रमष्टोत्तरसहस्रं जपित्वा देवाय वक्ष्यमाणविधिना जपं समर्प्य, पूर्वमण्डपस्येशानकोणे स्थापि-तविकिरपुञ्जोपरि सुवर्णगर्भं वस्त्रयुग्मवेष्टितं जलपूरितं करकं विन्यस्य, तत्रास्त्रदेवतां सिंहरूपां दक्षवामकरयोः खड्ग-खेटकधारिणीं घोररूपां पश्चिमाभिमुखां ध्यात्वा, तिष्ठन् गन्धादिपञ्चोपचारैः सम्पूज्य नमस्कृत्य, तं करकं कराभ्यामुद्धृत्य मण्डपाभ्यन्तरे प्रदक्षिणं भ्रमन् करकं स्वस्थाने निवेश्योपविश्यास्त्रमन्त्रेण पुनस्तामस्त्रदेवतां पञ्चोपचारैः सम्पूज्य, ततः प्राक्कृतेषु कुण्डेषु इन्द्रेशानयोर्मध्यगताचार्यकुण्डे गुरुरग्निस्थापनं कुर्यात्।

इन चौंसठ देवताओं को शङ्ख में पूजकर सकल कलामय शङ्खजल को मूलमन्त्र कहकर कलश में डाल दे। तब पीपल, कटहल, आम्रपल्लवों को इन्द्रवारुणी लता से वेष्टित करके कल्पवृक्षरूप में कलश पर स्थापित करे। तब कलश-जातीय पात्र में चावल भरकर ऊपर नारियल रखकर उसे कल्पवृक्ष का फल मानकर पात्र को कलश के मुख पर रखे। दो वस्त्र कलश में लपेटे। इस प्रकार वेदी पर प्रधान कलश का स्थापन करे। इसके बाद पूर्वादि तोरण द्वार के समीप पूर्वोक्त मण्डल के अष्टदल कमल के दलों में शालिपुञ्ज पर पूर्वोक्त विधि से प्रत्येक में एक-एक कलश स्थापित करे। पूर्व में स्थापित कलश में ध्रुव, दक्षिण में धरा, पश्चिम में वाक्पति, उत्तर में विघ्नेश का पूजन करे। इसी प्रकार आग्नेयादि कोणचतुष्टय में कलश स्थापित करे। आग्नेय कुम्भ में अमृत, नैर्ऋत्य में दुर्जय, वायव्य में सिद्धार्थ एवं ईशान में मंगल की पूजा करे। पुनः पूर्वादि कलशों में इन्द्रादि लोकपालों का आवाहन करे। वेदोक्त मन्त्र से पूजा करे। फिर पूर्वादि आठों दिशाओं में कलश के बाहर ऐरावत, पुण्डरीक, वामन, कुमुद, अञ्जन, पुष्पदन्त, सार्वभौम एवं सुप्रतीक—इन आठ दिग्गजों का पूजन करे।

कुण्ड में अग्नि-स्थापन—दिग्गजों की पूजा के बाद गुरु वेदी के पास जाकर अपने आसन पर बैठे। अपने इष्ट मन्त्र से तीन प्राणायाम करे। मन्त्र से करन्यास, षडङ्ग न्यास करे। समस्त न्यासों को करने के बाद देवता का ध्यान करके मानसोपचार से पूजा करे। प्रधान कलश में वक्ष्यमाण प्रकार से मूर्ति कल्पित करके उसमें इष्ट देवता का आवाहन करे। साङ्ग सावरण षोडशोपचार पूजन वक्ष्यमाण प्रकार से तत्कल्पोक्त विधि से करे। वेदी के दक्षिण भाग में हस्तमात्र आयाम विस्तार अंगुष्ठ मात्र उच्च समचतुरस्र स्थण्डिल बालू से बनावे। नित्य होमोक्त विधि से आज्य और चरु द्रव्य से हवन करे। पुनः देवता का पूजन करके कुम्भस्थ मूर्ति को योजित करे। उसी प्रकार अग्निपूजन करके विसर्जन करके वक्ष्यमाण विधि से सर्वभूत बलि तत्कल्पोक्त विधि से प्रदान करे। देवता के लिये उत्तरापोशन आदि के बाद नीराजन नित्य पूजोक्त विधि से करे। तीन प्राणायाम करके ऋष्यादि कर-षडङ्ग न्यास करे। मूल मन्त्र का एक हजार आठ जप करे। वक्ष्यमाण विधि से देवता को जप समर्पित करे। मण्डप के ईशान कोण में पूर्व-स्थापित विकीरित पुञ्ज पर सुवर्णगर्भ दो वस्त्र से वेष्टित जलपूर्ण करक (कमण्डलु) स्थापित करे। सिंहरूपा दक्ष-वाम हाथ में खड्ग एवं खेटकधारिणी घोररूपा पश्चिमाभिमुखी अस्त्रदेवता का बैठी हुई ध्यान करे। गन्धादि पञ्चोपचार से उसका पूजन करे। नमस्कार करे। तब उस करक को हाथों में लेकर मण्डप के अन्दर प्रदक्षिण क्रम से भ्रमण करके करक को अपने स्थान पर रखे। आसन पर बैठकर अस्त्र मन्त्र से पुनः उस अस्त्रदेवता का पंचोपचार पूजन करे। तब पूर्वनिर्मित कुण्डों में से ईशान पूर्व मध्य में स्थित आचार्य कुण्ड में गुरु अग्निस्थापन करे।

कुण्डाग्निस्थापनतत्पूजा

तत्रादौ कुण्डं गोमयेनोपलिप्य कुण्डसमीपे नित्यपूजोक्तविधिना स्वासनमास्तीर्य सम्पूज्य, तत्रोदङ्मुखः प्राङ्मुखो वोपविश्य मूलमन्त्रेण प्राणायामऋष्यादिकरषडङ्गन्यासान् विन्यस्य, देवतां ध्यात्वा मानसोपचारैः सम्पूज्य मूलं यथाशक्ति जपित्वा जपं समर्प्य श्रीगुरुं प्रणम्य कुण्डसंस्कारान् कुर्यात्। तत्रादौ कुण्डं मूलमन्त्रेण वीक्ष्यास्त्रमन्त्रेण प्रोक्ष्यास्त्रेणैव कुशैस्त्रिः सताड्य कवचेनाभ्युक्ष्यास्त्रेण कुण्डमध्ये किञ्चित् खात्वास्त्रमन्त्रेण तां मृदमङ्गुष्ठानामिकाभ्यां उद्धृत्य बहिस्त्यक्त्वा हृन्मन्त्रेण शुद्धमृत्तिकया खातमापूर्य अस्त्रमन्त्रेण समीकृत्य कवचमन्त्रेण जलैः संसिच्यास्त्रमन्त्रेण काष्ठादिना कुट्टयित्वा दृढीकृत्य, कवचमन्त्रेण कुशैः कुण्डं सम्मार्ज्य कवचेनैव गोमयाद्भिः संलिप्य, कवचेनैवाग्निसूर्यसोमानामष्टात्रिंशत्कलारूपं सञ्चिन्त्य, कवचेनैव मेखलात्रयेऽपि त्रिगुणीकृतसूत्रेण प्रतिमेखलं त्रिभिः संवेष्ट्य 'ॐ अमुककुण्डाय एतदासनं नमः' इत्याद्यासनादिदीपान्तैरुपचारैः प्रथमचतुरस्रादितत्तत्कुण्डनाम्ना चतुर्थीनमोऽन्तेन सम्पूज्य तथैव नाभिं च सम्पूज्य, मेखलात्रयं तथैव हृन्मन्त्रेण सम्पूज्यास्त्रमन्त्रेण कुण्डं वज्रवद्दृढं सञ्चिन्त्य, हृन्मन्त्रेण कुशैः कुण्डस्य चतुर्दिक्षु वह्निज्वालाविलासाय चतुष्पथं मार्गचतुष्टयं परिकल्प्य, कवचमन्त्रेणाच्छिन्नाग्रैः कुशैरस्त्रमन्त्राभिमन्त्रितैः कुण्डभित्तिगणं सर्वमाच्छादयन् अक्षपाटनं कुर्यात्, इत्यष्टादश संस्कारान् कुर्यात्।

पहले कुण्ड को गोबर से लीपे। कुण्ड के निकट नित्य पूजोक्त विधि से अपने आसन को बिछाकर पूजे। उस पर उत्तरमुख या पूर्वमुख होकर बैठे। मूलमन्त्र से प्राणायाम ऋष्यादि कर षडङ्ग न्यास करे। देवता का ध्यान करके मानसोपचार पूजन करे। मूल मन्त्र का जप यथाशक्ति करके जप-समर्पण करे। श्री गुरु को प्रणाम करके कुण्ड का संस्कार करे। कुण्ड को मूल मन्त्र बोलकर देखे। फट् से प्रोक्षण करे। फट् से तीन कुशों से ताड़न करे। हुं से अभ्युक्षण करे। कुण्डमध्य से खनकर फट् से कुछ मिट्टी अंगूठा अनामिका से लेकर कुण्ड के बाहर फेंके। हृन्मन्त्र से शुद्ध मिट्टी गड्ढे में भरे। अस्त्र मन्त्र से बराबर करे। कवच मन्त्र बोलकर उसे जल से सींचित करे। काष्ठादि से कूट कर दृढ़ करे। कवच मन्त्र कहकर कुश से कुण्ड का सम्मार्जन करे। कवच से गोबर आदि से लीपे। कवच मन्त्र बोलकर अग्नि, सूर्य, सोम की अड़तीस कला का चिन्तन करे। कवच से तीनों मेखलाओं से प्रत्येक को तीन सूतों से वेष्टित करे। 'ॐ अमुककुण्डाय एतदासनं नमः' कहकर आसन से दीपदान तक प्रथम चतुरस्र तब चतुर्थ्यन्त कुण्डनाम में नमः जोड़कर पूजा करे। उसी प्रकार नाभि की पूजा करे। हृन्मन्त्र से मेखला को पूजे। अस्त्र मन्त्र से वज्रवत् दृढ़ कुण्ड का चिन्तन करे। हृन्मन्त्र कहकर कुण्ड के चारों तरफ वह्निज्वाला विलास के लिये कुशों से चार मार्ग बनावे। कवच मन्त्र से अच्छिन्न अग्र वाले कुशों को अस्त्र मन्त्र से मन्त्रित करके कुण्डभीत्ति का आच्छादन करके अक्षपाटन करे। इस प्रकार अट्ठारह संस्कार करे।

अशक्तौ प्रथमोदितैश्चतुर्भिरेव संस्कारैः कुण्डं संस्कृत्य, तत्र हृन्मन्त्रेणा-स्त्रमन्त्रेण वा दक्षिणमध्योत्तरेषु प्रागग्राः पश्चिममध्यपूर्वेषूदगग्रा इति तिस्रस्तिस्रो रेखाः कुशमूलेन विलिख्य प्रणवेनाभ्युक्ष्य, प्रागग्रासु रेखासु दक्षिणरेखायां विष्णवे नमः। मध्यरेखायां रुद्राय नमः। उत्तरस्याम् इन्द्राय नमः। उदगग्रासु रेखासु पश्चिमायां ब्रह्मणे नमः। मध्यमायां सूर्याय नमः। पूर्वरेखायां सोमाय नमः। इति सम्पूज्य, तत्र वक्ष्यमाणयोगपीठक्रमेण मण्डूकादिपरतत्त्वान्तं योगपीठं सम्पूज्य, तत्र पद्मकेसरेषु स्वाग्रादिप्रादक्षिण्येन मध्यान्तं ॐ जयायै नमः। एवं विजयायै नमः। अजितायै नमः। अपराजितायै नमः। नित्यायै नमः। विलासिन्यै नमः। दोग्ध्र्यै नमः। अघोरायै नमः। मङ्गलायै नमः, इति सम्पूज्य 'ह्रीं सर्वशक्तिकमलासनाय नमः' इति मध्ये पुष्पाञ्जलिं निक्षिप्य, तत्र भुवनेश्वरीं तत्तन्मन्त्रेणावाह्यावाहनादिपरमीकरणान्तं तत्तन्मुद्रया विधायासनादिषोडशोपचारैराराध्य, तत्र श्रीशिवं ध्यात्वा मूलमन्त्रेण तथैव सम्पूज्य देवीमृतुस्नातां देवं च कामोन्मत्तं विचिन्त्य, स्वर्णादिपात्रेण मृत्पात्रं चेत् नूतनेन सूर्यकान्तादिभवमरणिभवं श्रोत्रियगृहाद्वाग्निमस्त्रमन्त्रेण पात्रे कृत्वा कवचमन्त्रेण सजातीयेन पात्रान्तरेण पिधाय, कन्यया सुवासिन्या वा समानीतं गुरुरादायास्त्रमन्त्रेणैकमङ्गारं तन्मध्यात् क्रव्यादांशं नैर्ऋतकोणे परित्यज्य, देवांशं मूलेन वीक्ष्यास्त्रेण प्रोक्ष्यास्त्रेण कुशैः संताड्य कवचेनाभ्युक्ष्य, तत्र स्वमूलाधारस्थवह्निमण्डलगतपरमात्मस्वरूपाग्नीषोमात्मकाद्बिन्दोः सकाशाद्वह्निं,

मणिपूरगतजाठरानलेन सह सुषुम्नामार्गेण वहन्नासापुटाध्वना निष्कास्य, रमिति वह्निबीजमुच्चरन् पुरत: पात्रस्थिते वह्नौ वह्निचैतन्यं संयोज्य औदर्यबैन्दवपार्थिववह्नीनामैक्यं विभावयन्, प्रणवेनाभिमन्त्र्य वमिति धेनुमुद्रयामृतीकृत्यास्त्रमन्त्रेण संरक्ष्य कवचेनावगुण्ठ्य 'ॐ रं वह्नये नमः' इति गन्धादिभिः सम्पूज्य, जानुभ्यामवनिं गतस्तत्पात्रं कराभ्यामादाय कुण्डोपरि त्रिः प्रदक्षिणं परिभ्राम्य, देव्या योनौ शिवबीजमिति ध्यायन् स्वाभिमुखं कुण्डमध्ये प्रणवमुच्चरन् तमग्निं निक्षिप्य, मैथुनधिया देवदेव्योराचमनं दत्त्वा 'ॐ चित्पिङ्गल हनहन पचपच दहदह सर्वज्ञाज्ञापय स्वाहा' इति मन्त्रमुच्चरन् मुखेन फूत्कृत्य कुशैरग्निं प्रज्वाल्य काष्ठैः पटूकृत्य, कृताञ्जलिस्तिष्ठन् 'ॐ अग्निं प्रज्वलितं वन्दे जातवेदं हुताशनम्। सुवर्णवर्णममलं समिद्धं सर्वतोमुखम्' इति ज्वलन्तं वह्निमुपस्थाय वक्ष्यमाणवह्निमन्त्रेण प्राणायामत्रयं कृत्वा, शिरसि भृगुऋषये नमः। मुखे गायत्रीछन्दसे नमः। हृदये अग्नये देवतायै नमः। गुह्ये रंबीजाय नमः। पादयोः स्वाहाशक्तये नमः इति विन्यस्य दीक्षाङ्गहोमे विनियोगः, इति कृताञ्जलिर्वदेत्। लिङ्गे सरयूं हिरण्यायै नमः। गुदे वरयूं कनकायै नमः। शिरसि शरयूं रक्तायै नमः। मुखे वरयूं कृष्णायै नमः। नासिकायां सरयूं सुप्रभायै नमः। नेत्रयोः ररयूं रक्तायै नमः। सर्वाङ्गे यरयूं बहुरूपायै नमः, इति सप्तजिह्वा विन्यस्य, ॐ सहस्रार्चिषे हृदयाय नमः। स्वस्ति-पूर्णाय शिरसे स्वाहा। उत्तिष्ठपुरुषाय शिखायै वषट्। धूमव्यापिने कवचाय हुं। सप्तजिह्वाय नेत्रत्रयाय वौषट्। धनुर्धरायास्त्राय फट्। इति षडङ्गानि विन्यस्य, शिरसि अग्नये जातवेदसे नमः। वामांसे अग्नये सप्तजिह्वाय नमः। वामपार्श्वे अग्नये हव्यवाहनाय नमः। वामकट्यां अग्नये अश्वोदरजाय नमः। लिङ्गे अग्नये वैश्वानराय नमः। दक्षकट्यां अग्नये कौमारतेजसे नमः। दक्षपार्श्वे अग्नये विश्वमुखाय नमः। दक्षांसे अग्नये देवमुखाय नमः, इति मूर्तीर्विन्यस्य, वह्निरूपं स्वात्मानं ध्यात्वा सप्तजिह्वामुद्रां प्रदर्श्य, कुण्डस्योत्तरभागे कुशास्तरे स्रुक्स्रुवौ प्रोक्षणीपात्रं आज्यस्थाली चरुस्थाली परिधित्रयं समित्पञ्चात्मकमिध्मं लूनमूलसाग्रकुशमुष्टिरिति पात्राण्यधोमुखानि संस्थाप्य, अन्यान्यपि दध्य-क्षतादिबलिद्रव्याणि गन्धपुष्पादिपूजाद्रव्याणि च यथायथं संस्थाप्याधोमुखानि स्रुक्स्रुवादीनि सपवित्राधोमुखहस्तसेक-रूपाभ्युक्षणपूर्वकमुत्तानीकृत्य, प्रणीतपात्रं प्रक्षाल्य स्वपुरतः कुशास्तरे निधाय शुद्धजलैरापूर्य तत्र गन्धाक्षतान् निक्षिप्य, प्रादेशमात्रं साग्रं कुशद्वयं मध्ये ब्रह्मग्रन्थियुतं जलाग्रे उत्तराग्रं पवित्रं निधाय करद्वयानामिकाङ्गुष्ठाभ्यां पवित्रं मूलाग्रे विधृत्यास्त्रमन्त्रमुच्चरन् पवित्रमध्येन जलं पात्राद्बहिस्त्रिवारं भूमौ निक्षिपेत्।

उपर्युक्त अट्ठारह संस्कारों को करने में असमर्थ होने पर पहले चार संस्कारों से कुण्ड को संस्कृत करे। तब हृन्मन्त्र या अस्त्र मन्त्र से दक्षिण-उत्तर में पूर्वाग्र एवं पश्चिम मध्य पूर्व में उत्तराग्र तीन-तीन रेखा कुशमूल से बनावे। प्रणव से अभ्युक्षण करे। पूर्वाग्र रेखाओं में से दक्षिण रेखा में विष्णवे नमः से पूजा करे। मध्य रेखा में रुद्राय नमः से पूजा करे। उत्तर रेखा में इन्द्राय नमः से पूजा करे। उत्तराग्र रेखाओं में पश्चिम रेखा में ब्रह्मणे नमः से पूजा करे। बीच वाली रेखा में सूर्याय नमः एवं पूर्व रेखा में सोमाय नमः से पूजा करे।

तत्पश्चात् वक्ष्यमाण योगपीठ क्रम से मण्डूकादि से परतत्त्व तक योगपीठ की पूजा करे। पद्मकेसरों में अपने आगे से प्रादक्षिण्य क्रम से मध्य से अन्त तक—ॐ जयायै नमः, ॐ विजयायै नमः, ॐ अजितायै नमः, ॐ अपराजितायै नमः, ॐ नित्यायै नमः, ॐ विलासिन्यै नमः, ॐ दोग्ध्र्यै नमः, ॐ अघोरायै नमः, ॐ मंगलायै नमः से नव शक्तियों का पूजन करे। 'ह्रीं सर्वशक्तिकमलासनाय नमः' से मध्य में पुष्पाञ्जलि दे। वहीं भुवनेश्वरी को उसके मन्त्र से आवाहन से परमीकरण तक करके सम्बन्धित मुद्रा दिखाकर आसनादि देकर षोडशोपचार से पूजन करे। श्री शिव का ध्यान करके मूल मन्त्र से उसी प्रकार पूजन करे। देवी को ऋतुस्नाता एवं देव को कामोन्मत्त चिन्तन करके स्वर्णादि या मिट्टीपात्र में सूर्यकान्तादि से उत्पन्न या अरणि से उत्पन्न या श्रोत्रिय गृह की अग्नि को अस्त्र मन्त्र से पात्र में ग्रहण करे। कवच मन्त्र से सजातीय अन्य पात्र में कन्या या सुवासिनी द्वारा लायी गयी अग्नि में से गुरु अस्त्रमन्त्र से एक अंगार लेकर क्रव्यादांश को नैर्ऋत्य कोण में फेंक दे। देवांश को मूल मन्त्र से देखे, अस्त्र से प्रोक्षण करे, कुश से ताडन करे, कवच से अभ्युक्षण करे।

तब अपने मूलाधारस्थ वह्निमण्डलगत परमात्मस्वरूप अग्निषोमात्मक बिन्दु के समीप से अग्नि को मणिपूरगत

जाठरानल के साथ सुषुम्ना मार्ग से गतिमान नासापुट से बाहर निकाले। वह्निबीज 'रं' कहकर सामने स्थित पात्र में वह्निचैतन्य को योजित करे और ऐन्दव पार्थिव वह्नि में ऐक्य की भावना करे। प्रणव से अभिमन्त्रित करे। वं धेनुमुद्रा से अमृतीकरण करे। अस्त्र मन्त्र से संरक्षण करे कवच से अवगुण्ठन करे '३ॐ रं वह्नये नमः' से गन्धादि से पूजन करे। घुटनों को भूमि पर रखकर उस पात्र को हाथ में लेकर कुण्ड पर तीन बार घुमाकर देवी की योनि में शिवबीज मानकर स्वाभिमुख कुण्ड में प्रणव बोलते हुए उस अग्नि को डाल दे। देवी देव का मैथुन मानकर देव देवी को तीन आचमन प्रदान करे।

'ॐ चित्पिंगल हन हन पच पच दह दह सर्वज्ञाज्ञापय स्वाहा' मन्त्र बोलकर मुख से फूंक मारे। कुश से अग्नि प्रज्वलित करके उस पर लकड़ी रखे। हाथ जोड़कर बैठे और कहे—ॐ अग्निं प्रज्वलितं वन्दे जातवेदं हुताशनम्। सुवर्णवर्णममलं समिद्धं सर्वतोमुखम्'। जलती अग्नि को स्थापित करे। वक्ष्यमाण अग्निमन्त्र से तीन प्राणायाम करे। तब विनियोग करे—शिरसि भृगु ऋषये नमः। मुखे गायत्री छन्दसे नमः। हृदये अग्निदेवतायै नमः। गुह्ये रं बीजाय नमः। पादयोः स्वाहा शक्तये नमः। तब हाथ जोड़कर 'दीक्षागहोमे विनियोगः' कहे।

सप्तजिह्वा न्यास—लिंगे सरयूं हिरण्यायै नमः। गुदे परयूं कनकायै नमः। शिरसि शरयूं रक्तायै नमः। मुखे वरयूं कृष्णायै नमः। नासिकायां लरयूं सुप्रभायै नमः। नेत्रयोः रयूं रक्तायै नमः। सर्वांगे यरयूं बहुरूपायै नमः।

षडङ्ग न्यास—सहस्रार्चिषे हृदयाय नमः। स्वस्तिपूर्णाय शिरसे स्वाहा। उत्तिष्ठपुरुषाय शिखायै वषट्। धूमव्यापिने कवचाय हुम्। सप्तजिह्वाय नेत्रत्रयाय वौषट्। धनुर्धराय अस्त्राय फट्।

मूर्तिन्यास—शिरसि अग्नये जातवेदसे नमः। वामांसे अग्नये सप्तजिह्वाय नमः। वामपार्श्वे अग्नये हव्यवाहनाय नमः। वामकट्यां अग्नये अश्वोदरजाय नमः। लिङ्गे अग्नये वैश्वानराय नमः। दक्षकट्यां अग्नये कौमारतेजसे नमः। दक्षपार्श्वे अग्नये विश्वमुखाय नमः। दक्षांसे अग्नये देवमुखाय नमः।

उत्पवन—इन न्यासों के बाद अपने को अग्निरूप मानकर सप्तजिह्वा मुद्रा दिखावे। कुण्ड के उत्तर भाग में कुश पर स्रुच, स्रुवा, प्रोक्षणी पात्र, आज्य थाली, चरुथाली, परिधित्रय समित् पञ्चात्मक अग्नि, लून मूल साग्र कुशमुष्टि के समान पात्रों को अधोमुख स्थापित करे। अन्य दही अक्षतादि बलि द्रव्य गन्ध पुष्पादि पूजा द्रव्य यथास्थान स्थापित करे। अधोमुख स्रुच, स्रुवादि को अधोमुख हाथ में कुश लेकर सेक रूप से वीक्षण करे। तब उत्तान करके प्रणीता पात्र को धोकर अपने आगे कुश पर रखे। उसमें शुद्ध जल भरे। गन्धाक्षत डाले। वित्ता भर के अग्रयुक्त दो कुश के मध्य में ब्रह्मगाँठ लगावे। जल के आगे उत्तराग्र कुश को रखे। दोनों हाथ की अनामिका अंगूठों से कुश को मूलाग्र में ग्रहण करे। अस्त्र मन्त्र का उच्चारण करे कुश मध्य से जल पात्र के बाहर तीन बार फेंके।

इत्युत्पवनं विधाय तन्मध्ये किञ्चित् घृतं निक्षिप्य, तत्पात्रं कराभ्यामामस्तकमुद्धृत्य कुण्डस्योत्तरभागे कुशास्तरे निधाय तदुपरि प्रागग्रान् दर्भान् निक्षिपेत्, इति प्रणीतापात्रं संस्थाप्य, प्रोक्षणीपात्रं प्रक्षाल्य शुद्धजलैरापूर्य तन्मध्ये प्रणीतापात्रजलं पात्रान्तरेणोद्धृत्य किञ्चिद्दत्त्वा, तेन जलेन मूलमन्त्रेण सर्वाणि पात्राणि होमद्रव्याणि पूजाद्रव्याणि च प्रोक्षयेत्, इति द्रव्यासादनं विधाय, प्रोक्षणीयजलेनाग्निं परिषिच्यागर्भैश्चतुर्भिर्दर्भैः प्राचीदिशमारभ्य प्राच्यामुत्तराग्रैरीशानादाग्नेयान्तं परिस्तीर्य, पुनर्दक्षिणस्यां प्रागग्रैः पूर्वपरिस्तरणमूलमग्रैराच्छादयन् पुनः पश्चिमायामुत्तराग्रैर्दक्षिणपरिस्तरणमूलं मूलेनाच्छादयन्, पुनरुत्तरस्यां प्रागग्रैः पश्चिमपरिस्तरणाग्रं पूर्वपरिस्तरणाग्रमग्रेण च परिस्तीर्य, परिधित्रयमादाय सर्वतः स्थूलं पश्चिम उत्तराग्रं, ततः कनिष्ठं दक्षिणे पूर्वाग्रं, पश्चिमपरिधेर्मूलोपरि मूलं यथा भवति तथा, पुनस्ततोऽपि कनिष्ठमुत्तरस्यां पूर्वाग्रं, पश्चिमपरिधेरग्रोपरि मूलमिति कुण्डस्य मध्यमेखलोपरि परिस्तरणोपरि परिधित्रयं निक्षिपेत्। अत्र पश्चिममेखलायां तु परिस्तरणपरिधिस्थापनं योनिनालोर्ध्वमेखलयोरन्तराले कार्यमिति।

इस प्रकार उत्पवन करने के बाद उसमें थोड़ा घी डाले। उसे हाथों से मस्तक तक ले जाय। तब कुण्ड के उत्तर भाग में कुश पर रखे। उस पर पूर्वाग्र कुशों को रखे इस प्रकार प्रणीता पात्र का स्थापन करे। प्रोक्षणी पात्र को धोकर शुद्ध जल

में भरकर उसमें प्रणीता पात्र का थोड़ा जल दूसरे पात्र में लेकर डाले। उस जल से मूल मन्त्र द्वारा सभी पात्रों होमद्रव्य एवं पूजा द्रव्य का प्रोक्षण करे। द्रव्यासादन के बाद प्रोक्षणी जल से अग्नि का परिसेचन करे। चार कुशों को पूर्व दिशा से आरम्भ करके प्राची में उत्तराग्र एवं ईशान से आग्नेय तक बिछा दे। फिर दक्षिण में पूर्वाग्र कुशों से पूर्व परिस्तरण मूल और अग्र को आच्छादित करे। फिर पश्चिम में उत्तराग्र दक्षिण के परिस्तरण मूल को मूल से आच्छादित करे, फिर पूर्वाग्र पश्चिम परिस्तरण के अग्र, पूर्व परिस्तरण अग्र से परिस्तरण करे। परिधित्रय लेकर सभी ओर स्थूल पश्चिम उत्तराग्र कनिष्ठ दक्षिण पूर्वाग्र परिधि के मूल पर रखे। पुनः उससे भी कनिष्ठ उत्तर के पूर्वाग्र पश्चिम परिधि के अग्र पर रखे। कुण्ड की मध्य मेखला के परिस्तरण पर तीनों परिधियों को रखे। पश्चिम मेखला में परिस्तरण स्थापन योनि नाल के अन्तराल में करे।

पश्चिमपरिधौ ॐ ब्रह्मणे नमः। दक्षिणपरिधौ ॐ विष्णवे नमः। उत्तरपरिधौ ॐ रुद्राय नमः। इति सम्पूज्य, स्वेष्टदेवतादीक्षितं ब्राह्मणमाहूय, कुण्डस्य दक्षिणे भागे कुशासने समुपवेश्य, अमुकगोत्रोऽमुकशर्माहममुकगोत्रामुकवेदान्तर्गतामुकशाखाध्यायिनममुकशर्माणं ममेष्टदीक्षाङ्गभूतहोमकर्मणि कृताकृतावेक्षणाय ब्रह्मत्वेन त्वां वृणे, इति वस्त्रालङ्कारादिभिर्वृणुयात्। ततस्तं गन्धादिभिः सम्पूज्य, ब्राह्मणालाभे कुशबटुं वा सम्पूज्य वह्निमन्त्रेणार्घ्यपाद्याद्याचमनीयमधुपर्कपात्राणि संस्थाप्य संस्कृत्य कुण्डमध्ये षट्कोणगर्भितकर्णिकं सकेसरं चतुर्द्वारयुक्तचतुरस्रत्रयवेष्टितमष्टदलकमलं वह्नेः पूजापीठं विभाव्य, तत्र प्रागुक्तविधिना मण्डूकादिपरतत्त्वान्तं योगपीठं समभ्यर्च्य, अष्टदलकेसरेषु स्वाग्रादिप्रादक्षिण्येन पीतायै नमः, श्वेतायै नमः, अरुणायै नमः, कृष्णायै नमः, धूम्रायै नमः, तीव्रायै नमः, विस्फुलिङ्गिन्यै नमः, रुचिरायै नमः, ज्वालिन्यै नमः इति मध्यान्तं नवशक्तीः सम्पूज्य, 'रं सर्वशक्तिकमलासनाय नमः' इति समस्तं पीठं सम्पूज्य, तन्मध्ये वह्निं,

> **करैर्वरस्वस्तिकशक्त्यभीतीर्दधानमम्भोजगतं त्रिनेत्रम्।**
> **सिन्दूरवर्णं तपनीयभूषं वह्निं जटाभूषितमौलिमीडे ॥१॥**

इति ध्यात्वा, सप्तजिह्वामुद्रां प्रदर्श्य 'ॐ वैश्वानर जातवेद लोहिताक्ष सर्वकर्माणि साधय स्वाहा अग्नये नमः' इत्यग्निं त्रिः पुष्पाञ्जलिना सम्पूज्य, पुनर्वह्निमन्त्रमुच्चार्याग्नये एतदासनं नमः, एषमग्ने एष ते अर्घः स्वाहा, एतत्ते पाद्यं नमः, एतत्ते आचमनीयं स्वधा, एष ते मधुपर्कः स्वधा, एतत्ते पुनराचमनीयं स्वधा, एतत्ते स्नानं नमः, इति पुरश्चरणमुखमूर्घादिवसर्वाङ्गोद्देशेन मेखलाया बहिः पात्रान्तरे अर्घ्यपाद्यादिस्नानान्ता वह्नेस्तत्तदङ्गभावनां परिकल्प्य, पुनराचमनीयं दत्त्वा वह्नावेव वस्त्रं दत्त्वा पुनराचमनीयं दत्त्वा यज्ञोपवीतं निवेद्य बहिः पुनराचमनीयं दत्त्वा गन्धपुष्पे वह्नावेव निवेदयेत्, इति वह्निमन्त्रेणासनादिपुष्पान्तानुपचारानुपचर्य षट्कोणेषु देवाग्रादिकोणमारभ्य मध्यान्तं स्ररयूं हिरण्यायै नमः। वरयूं कनकायै नमः। शरयूं रक्तायै नमः। वरयूं कृष्णायै नमः। लरयूं प्रभायै नमः। ररयूं अतिरक्तायै नमः। यरयूं बहुरूपायै नमः, इति सम्पूज्य, अष्टदलकेसरेषु अग्नीशासुरवायव्यदेवताग्रतादिचतुर्दिक्षु ॐ सहस्रार्चिषे हृदयाय नमः। ॐ स्वस्तिपूर्णाय शिरसे स्वाहा नमः। ॐ उत्तिष्ठपुरुषाय शिखायै वषट् नमः। ॐ धूमव्यापिने कवचाय हुं नमः। सप्तजिह्वाय नेत्रत्रयाय वौषट् नमः। ॐ धनुर्धराय अस्त्राय फट् नमः। इति षडङ्गानि सम्पूज्य, अष्टदलेषु देवाग्रादिप्रादक्षिण्येन ॐ अग्नये जातवेदसे नमः। एवं अग्नये सप्तजिह्वाय नमः, अग्नये हव्यवाहनाय नमः, अग्नयेऽश्वोदरजाय नमः, अग्नये वैश्वानराय नमः, अग्नये कौमारतेजसे नमः, अग्नये विश्वमुखाय नमः, अग्नये देवमुखाय नमः, इति प्रादक्षिण्येनाष्टमूर्तीः सम्पूज्य, तद्बहिश्चतुरस्रे इन्द्रादीन् सायुधान् सम्पूज्य, पुनर्वह्निमन्त्रेण वह्निं सम्पूज्य, धूपदीपादि दत्त्वा नैवेद्यमुत्सृज्याग्नौ प्रक्षिप्य प्रागवदाचमनीयं दत्त्वा, ततः स्रुक्स्रुवौ प्राञ्चावधोमुखावग्नौ सन्ताप्य, तयोरग्रं कुशाग्रैर्मध्यं मध्यैर्मूलं मूलैरिति त्रिः सम्मृज्याग्नौ तान् प्रक्षिप्य, स्रुक्स्रुवौ स्वदक्षिणभागे कुशास्तरे निधाय, आज्यस्थालीमादायास्त्रमन्त्रेण प्रक्षाल्य स्वपुरतः कुशास्तरे निधाय, तदुपर्युत्तराग्रं प्रादेशमात्रं मध्ये ब्रह्मग्रन्थियुतं कुशद्वयरूपं पवित्रं निधाय, पात्रान्तरस्थं शुद्धं गोघृतं दुर्गन्धादिदूषणरहितं वीक्षणादिचतुःसंस्कारैः संस्कृतं घृतमिति

धेनुमुद्रयामृतीकृतं मूलेनाष्टधाभिमन्त्रितमाज्यस्थाल्यां निक्षिप्य, कुण्डादङ्गारानुद्धृत्य मेखलाया बहिर्भूमौ वायव्यकोणे निक्षिप्य, तेष्वाज्यस्थालीं हृन्मन्त्रेण निधाय, कुशद्वयं प्रज्वाल्य हृन्मन्त्रेणाज्ये निक्षिप्य शेषमग्नौ निक्षिप्य, पुनर्दर्भद्वयं प्रज्वाल्य कवचमन्त्रेणाज्यस्थालीमभितः परिभ्राम्य दग्धशेषमग्नौ निक्षिप्य, पुनः कुशान् प्रज्वाल्य हृन्मन्त्रेणाज्ये प्रदर्श्य दग्धशेषमग्नौ निक्षिप्य, आज्यस्थालीमुद्धृत्य प्रादक्षिण्येन कुण्डं परितो भ्रामयन् आनीय स्वपुरतः कुशास्तरे निधाय, बाह्यस्थानङ्गारान् कुण्डमध्ये निक्षिप्य, अपः संस्पृश्याङ्गुष्ठानामिकाभ्यां करद्वयेन पवित्रं मूलाग्रे धृत्वा मन्त्रमुच्चरन् पवित्रमध्येन घृतमुत्पूय, हृन्मन्त्रमुच्चरन् तथैव पवित्रमध्येन स्वाभिमुखं घृतं त्रिः संप्लाव्य, तत्पवित्रमाज्यस्थाल्यां प्रागग्रं मध्ये निवेश्य, भागद्वयं कृत्वा दक्षिणभागं शुक्लपक्षं वामभागं कृष्णपक्षं परिकल्प्य, पुनस्तथैव वामभागे इडां दक्षिणभागे पिङ्गलां मध्ये सुषुम्नामिति नाडीत्रयं सञ्चिन्त्य, स्रुवेण दक्षिणभागात् हृन्मन्त्रेणाज्यमादाय 'अग्नये स्वाहा' इति वह्नेर्दक्षिणनेत्रे हुत्वा अग्नये इदं न मम, इत्युद्देशत्यागं विधाय, पुनर्हृन्मन्त्रेण वामभागादाज्यं गृहीत्वा 'सोमाय स्वाहा' इति वह्नेर्वामनेत्रे हुत्वा सोमाय इदं न मम, इत्युद्देशत्यागं विधाय, पुनर्हृदयमन्त्रेण मध्यादाज्यं गृहीत्वा 'ॐ अग्नीषोमाभ्यां स्वाहा' इति वह्नेर्ललाटलोचने हुत्वा इदमग्नीषोमाभ्यां न मम, इत्युद्देशत्यागं कृत्वा, पुनर्दक्षिणभागाद्धृदाज्यं गृहीत्वा 'अग्नये स्विष्टकृते स्वाहा' इति वह्नेर्वक्त्रे हुत्वा अग्नये स्विष्टकृते इदं न मम, इत्युद्देशत्यागं विधाय 'ॐ भूः स्वाहा' अग्नये इदं न मम, 'ॐ भुवः स्वाहा' वायवे इदं न मम, 'ॐ स्वः स्वाहा' सूर्याय इदं न मम, 'ॐ भूर्भुवःस्वः स्वाहा' प्रजापतये इदं न मम, 'ॐ वैश्वानर जातवेद इहावह लोहिताक्ष सर्वकर्माणि साधय स्वाहा' इति वह्निमन्त्रेण वारत्रयं हुत्वा अग्नये इद न मम, इत्युद्देशत्यागं कृत्वा 'ॐ अग्नेर्गर्भाधानं सम्पादयामि स्वाहा' एवं पुंसवनं, सीमन्तोन्नयनम्, इति प्रतिकर्माज्याहुत्यष्टकं हुत्वा, वागीश्वराज्जातं वह्निं प्रागुक्तरूपं ध्यायन् 'अग्नेर्जातकर्म०' इत्यष्टावाज्याहुतीर्हुत्वा, वह्नेर्नालच्छेदं कृत्वा सूतकं संशोध्य 'वह्नेर्नामकरणं सम्पादयामि स्वाहा' इत्यष्टावाज्याहुतीर्हुत्वा शिवाग्निरिति तस्य नाम कृत्वा, 'ॐवह्नेरुपनिष्क्रमणं सम्पादयामि स्वाहा, अग्नेरन्नप्राशनं सम्पादयामि स्वाहा, अग्नेश्चौलं सम्पादयामि स्वाहा, अग्नेरुपनयन सम्पादयामि स्वाहा, अग्नेर्महानाम्न्यं सम्पादयामि स्वाहा, अग्नेर्महाव्रतं सम्पादयामि स्वाहा, अग्नेरौपनिषद सम्पादयामि स्वाहा, अग्नेर्गोदानं सम्पादयामि स्वाहा, अग्नेः समावर्तनं सं०, अग्नेरुद्वाहं सम्पादयामि स्वाहा' इति प्रतिकर्माष्टावाज्याहुतीर्हुत्वा, वह्नेर्गर्भाधानाद्युद्वाहान्तान् संस्कारान् विधाय, वह्नेः पितरौ देवदेव्यौ प्राग्वत् सम्पूज्य विसृज्य, मूलाग्रेषु घृतसंसिक्ताः पञ्च समिधस्तूष्णीमेकदैवाञ्जलिना वह्नौ समर्प्य, ॐ सरयूं हिरण्यायै स्वाहा, एवं वरयूं कनकायै स्वाहा, शरयूं रक्तायै स्वाहा, वरयूं कृष्णायै स्वाहा, लरयूं सुप्रभायै स्वाहा, ररयूं अतिरक्तायै स्वाहा, यरयूं बहुरूपायै स्वाहा, ॐ सहस्रार्चिषे हृदयाय स्वाहा, एवं स्वस्तिपूर्णाय शिरसे स्वाहा, उत्तिष्ठपुरुषाय शिखायै स्वाहा, धूमव्यापिने कवचाय स्वाहा, सप्तजिह्वाय नेत्रत्रयाय स्वाहा, धनुर्धराय अस्त्राय स्वाहा। ॐ अग्नये जातवेदसे स्वाहा, एव अग्नये सप्तजिह्वाय स्वाहा, अग्नये हव्यवाहनाय स्वाहा, अग्नये अश्वोदराय स्वाहा, अग्नये वैश्वानराय स्वाहा, अग्नये कौमारतेजसे स्वाहा, अग्नये विश्वमुखाय स्वाहा, अग्नये देवमुखाय स्वाहा, इति जिह्वाङ्गमूर्तिमन्त्रैरेकैकामाहुतिं दत्त्वा, ॐ लं इन्द्राय स्वाहा, इन्द्राय इदं न मम, एवं अग्नये स्वाहा, यमाय स्वाहा, निर्ऋतये स्वाहा, वरुणाय स्वाहा, वायवे स्वाहा, कुबेराय स्वाहा, ईशानाय स्वाहा, ब्रह्मणे स्वाहा, अनन्ताय स्वाहा, वज्राय स्वाहा, शक्तये स्वाहा, दण्डाय स्वाहा, खड्गाय स्वाहा, पाशाय स्वाहा, अङ्कुशाय स्वाहा, गदायै स्वाहा, शूलाय स्वाहा, पद्माय स्वाहा, चक्राय स्वाहा। एवं तत्तन्नामभिरेकैकामाहुतिं हुत्वा सर्वत्र तत्तन्नामोद्देशत्यागं कुर्यात्। ततः स्रुवेणाज्यमादाय चतुर्वारं निक्षिप्याधोमुखं स्रुवो मुखे निधायोत्थाय, प्रागुक्तवह्निमन्त्रमुच्चार्य स्वाहास्थाने वौषडित्यग्नौ तिष्ठन् स्रुचा हुत्वोपविश्य, ॐ स्वाहा, ॐ श्रीं स्वाहा, ॐश्रींह्रीं स्वाहा, ॐश्रींह्रींक्लीं स्वाहा, ॐ श्रींह्रींक्लींग्लौं स्वाहा, ॐ श्रींह्रींक्लींग्लौंगं स्वाहा, ॐ श्रींह्रींक्लींग्लौंगं गणपतये स्वाहा, ॐ श्रींह्रींक्लींग्लौंगं गणपतये वरवरद स्वाहा, ॐ श्रींह्रींक्लींग्लौंगं गणपतये वरवरद सर्वजनं मे स्वाहा,

ॐ श्रीह्रींक्लींग्लौंग गणपतये वरवरद सर्वजन मे वशमानय स्वाहा, इति दशधा विभक्तेन महागणपतिमन्त्रेण दशाहुतीर्हुत्वा, 'ॐ श्रीह्रींक्लींग्लौंग गणपतये वरवरद सर्वजनं मे वशमानय स्वाहा' इति समस्तव्यस्तमन्त्रेण चतस्र आज्याहुतीर्जुहुयात्।

इत्यग्निस्थापनविधिः

पश्चिम परिधि में ॐ ब्रह्मणे नमः, दक्षिण परिधि में ॐ विष्णवे नमः, उत्तर परिधि में ॐ रुद्राय नमः से पूजा करे। अपने इष्ट देवता से दीक्षित ब्राह्मण को लाकर कुण्ड के दक्षिण भाग में कुशासन पर बैठाये। अमुक गोत्र अमुक शर्मा अमुक गोत्र अमुक वेदान्तर्गत अमुक शाखाध्यायी अमुक शर्मा मे इष्ट दीक्षा के अङ्गभूत हवन कर्म में कृताकृत देखने के लिये ब्रह्म के रूप में तुम्हें वरण करता हूँ—यह कहकर वस्त्रालङ्कार से वरण करे। ब्राह्मण के न होने पर कुशवटु का पूजन करे.

वह्निमन्त्र से अर्घ्य, पाद्य, आचमनीय, मधुपर्क के पात्र को स्थापित करे। संस्कृत करे। कुण्ड में षट्कोण-गर्भित केसर चतुर्द्वारयुक्त तीन चतुरस्र वेष्टित अष्टदल कमल की वह्नि की पूजापीठ बनाकर वहाँ पूर्वोक्त विधि से मण्डूकादि परतत्त्वान्त योगपीठ का अर्चन करे। अष्टदल के केसर में अपने आगे से प्रदक्षिणक्रम से पीतायै नमः, श्वेतायै नमः, अरुणायै नमः, कृष्णायै नमः, धूम्रायै नमः, नीलायै नमः, विस्फुलिङ्गिन्यै नमः, रुचिरायै नमः, ज्वालिन्यै नमः से मध्य तक नव शक्तियों की पूजा करें र सर्वशक्तिकमलासनाय नमः से पूरे पीठ का पूजन करे। तदनन्तर उसमें इस प्रकार अग्नि का ध्यान करे—

करैर्वरस्वस्तिकशक्त्यभीतिदधानमम्भोजगतं त्रिनेत्रम्। सिन्दूरवर्णं तरुणेन्दुभूषं वह्निं जटाभूषितमौलिमीडे॥

ध्यान करने के बाद सप्तजिह्वा मुद्रा दिखाये।

'ॐ वैश्वानर जातवेद इहावह लोहिताक्ष सर्वकर्माणि साधय स्वाहा अग्नये नमः' कहकर तीन पुष्पाञ्जलि से पूजा करे। पुनः वह्निमन्त्र कहकर 'अग्नये एतदासनं नमः, एष ते अर्घ्य स्वाहा, एतत्ते पाद्यं नमः, एतत्ते आचमनीयं स्वधा, एष ते मधुपर्क स्वधा, एतत्ते पुनराचमनीयं स्वधा, एतत्ते स्नानं नमः'—इस प्रकार पुरश्चरण मुख मूर्धादि सर्वांगों के उद्देश्य से मेखला के बाहर दूसरे पात्र में अर्घ्य पाद्यादि स्नान तक अग्नि अङ्गों की भावना करके स्थापित करे। पुनः आचमनीय देकर वस्त्र दान करे, पुनराचमनीय देकर यज्ञोपवीत देवे। पुनः आचमनीय देकर गन्ध पुष्पादि का निवेदन करे। वह्निमन्त्र से आसन से लेकर पुष्प तक के उपचारों से पूजन करे। षट्कोण में देवाग्र कोण से प्रारम्भ करके मध्य तक इनकी पूजा करे—सरयूं हिरण्यायै नमः। वरयूं कनकायै नमः। शरयूं रक्तायै नमः। वरयूं कृष्णायै नमः। लरयूं प्रभायै नमः। ररयूं अतिरक्तायै नमः। यरयूं बहुरूपायै नमः।

अष्टदल के केसर में अग्नि-ईशान-नैर्ऋत्य-वायव्य, देवता के आगे तथा दिशाओं में षडङ्ग पूजन करे—ॐ सहस्रार्चिषे हृदयाय नमः। ॐ स्वस्तिपूर्णाय शिरसे स्वाहा। ॐ उत्तिष्ठपुरुषाय शिखायै वषट्। ॐ धूमव्यापिने कवचाय हुम्। सप्तजिह्वाय नेत्रत्रयाय वौषट्। ॐ धनुर्धरायास्त्राय फट्। अष्टदल के आठ दलों में देवता के आगे से प्रारम्भ करके प्रादक्षिण्य क्रम से इस प्रकार पूजन करे—ॐ अग्नये जातवेदसे नमः। ॐ अग्नये सप्तजिह्वाय नमः। ॐ अग्नये हव्यवाहनाय नमः। ॐ अग्नये अश्वोदरजाय नमः। ॐ अग्नये वैश्वानराय नमः। ॐ अग्नये कौमारतेजसे नमः। ॐ अग्नये विश्वमुखाय नमः। ॐ अग्नये देवमुखाय नमः।

इसके बाहर चतुरस्र में अस्त्रों सहित इन्द्रादि का पूजन करे। पुनः वह्निमन्त्र से वह्नि की पूजा करे। धूप-दीपादि प्रदान करे, नैवेद्य लेकर अग्नि में डाले। पूर्ववत् आचमनीय देवे। स्रुक् स्रुव को अधोमुख करके अग्नि में तपाये। कुश के अग्रमध्य से, मध्य मूल में एवं मूल में मूल मन्त्र से तीन बार मार्जन कर अग्नि में डाल दे।

अपने दाँये भाग में कुश पर स्रुक् स्रुव को रखे। आज्यस्थाली को अस्त्र मन्त्र से धोकर अपने आगे कुश पर रखे उस पर एक वित्ता के दो कुशों में ब्रह्मग्रन्थि लगाकर उत्तराग्र करके रखे। दूसरे पात्र में दुर्गन्धादि रहित गोघृत लेकर चार संस्कारों से संस्कृत करे। वं कहकर धेनुमुद्रा से अमृतीकरण करे। मूल मन्त्र के आठ जप से मन्त्रित करे, तब आज्यस्थाली में उसे डाल दे। कुण्ड से अङ्गार लेकर मेखला के बाहर भूमि पर वायव्य कोण में फेंक दे। उस आज्यस्थाली को इन्मन्त्र से स्थापित करे दो कुशों को आग में तपाकर घी में डाल दे। बचे घृत को आग में डाल दे। पुनः दो कुश तपाकर कवच मन्त्र से आज्यस्थाली के चारों ओर घुमाकर दग्ध शेष को आग में डाल दे। फिर कुशों को तपाकर इन्मन्त्र से आज्य को दिखाकर दग्ध शेष को

अग्नि मे डाल दे। आज्यस्थाली को लेकर प्रादक्षिण्य क्रम से कुण्ड के चारों ओर घुमाकर अपने आगे कुश पर रखे। कुण्ड मे अङ्गारों को एकत्रित कर दे। दोनों हाथों के अंगूठा-अनामिका को सटाकर कुशों के मूल और अग्र को पकड़कर मन्त्रोच्चार करके कुश के मध्य से घृत को हिलाये। इन्मन्त्र कहकर उसी प्रकार कुश मध्य मे घी का अपनी ओर तीन बार संप्लावन करे। उस कुश को आज्यस्थाली मध्य मे पूर्वाग्र रखकर घी को दो भाग बना दे। दक्षिण भाग को शुक्ल पक्ष एवं वाम भाग को कृष्ण पक्ष कल्पित करे। फिर उसमे वाम भाग मे इड़ा, दक्षिण भाग में पिङ्गला और मध्य भाग में सुषुम्ना नाड़ियों का चिन्तन करे।

स्रुव से दक्षिण भाग से इन्मन्त्र से आज्य लेकर 'अग्नये स्वाहा' से अग्नि के दक्षिण नेत्र मे आहुति डाले और कहे— अग्नये इदं न मम। पुन: वाम भाग से आज्य लेकर 'सोमाय स्वाहा सोमाय इदं न मम' से अग्नि के वाम नेत्र मे हवन करे। पुन: हृदय मन्त्र से मध्य आज्य लेकर 'ॐ अग्नीषोमाभ्यां स्वाहा इदं अग्नीषोमाभ्यां न मम' से अग्नि के तृतीय नेत्र मे हवन करे। फिर दक्षिण भाग से आज्य लेकर 'अग्नये स्विष्टकृते स्वाहा, अग्नये स्विष्टकृते इदं न मम' कहकर अग्नि के मुख मे हवन करे। तब इस प्रकार से हवन करे— ॐ भू: स्वाहा अग्नये इदं न मम। ॐ भुव: स्वाहा वायवे इदं न मम। ॐ स्व: स्वाहा सूर्याय इदं न मम। ॐ भूर्भुव: स्व: स्वाहा प्रजापतये इदं न मम। पुन: वह्निमन्त्र से तीन हवन करे— ॐ वैश्वानर जातवेद इहावह लोहिताक्ष सर्वकर्माणि साधय स्वाहा अग्नये इदं न मम। इसके बाद अग्नि का संस्कार इस प्रकार करे— ॐ अग्नये गर्भाधानसंस्कारं करोमि स्वाहा। इसी प्रकार पुंसवन, सीमन्तोन्नयन कर्म के लिये भी आठ-आठ आज्याहुति से हवन करे।

वर्णाक्षर से उत्पन्न अग्नि के पूर्वोक्त रूप का ध्यान करके 'अग्नेर्जातकर्म सम्पादयामि स्वाहा' से आठ आज्याहुति से हवन करे। अग्नि का नालच्छेद करके सूतक का संशोधन करे। 'वह्नेर्नामकरण सम्पादयामि स्वाहा' से आठ आहुतियाँ प्रदान करे। उसका नाम शिवाग्नि रखकर आगे का संस्कार करे। ॐ वह्नेर्निष्क्रमणं सम्पादयामि स्वाहा। अग्नेरन्नप्राशनं सम्पादयामि स्वाहा, अग्नेश्चौलं सम्पादयामि स्वाहा, अग्नेरुपनयनं सम्पादयामि स्वाहा, अग्नेर्महानाम्न्यं सम्पादयामि स्वाहा, अग्नेर्महाव्रतं सम्पादयामि स्वाहा, अग्नेरौपनिषदं सम्पादयामि स्वाहा, अग्नेर्गोदानं सम्पादयामि स्वाहा, अग्ने: समावर्तनं सम्पादयामि स्वाहा, अग्नेरुद्वाहं सम्पादयामि स्वाहा से प्रत्येक के लिये आठ-आठ आहुतियों से हवन करे। अग्नि के गर्भाधान से उद्वाह तक के संस्कारों को करे। अग्नि के पितरों एवं देव-देवी का पूर्ववत् पूजन करके विजर्सन करे। पाँच समिधाओं के दोनों छोरों को घी से संसिक्त करके एक अञ्जली में लेकर मौन होकर अग्नि मे प्रक्षिप्त करे। तब निम्न प्रकार से हवन करे—

सप्तजिह्वाओं का हवन— ॐ सरयूं हिरण्यायै स्वाहा। इसी प्रकार षरयूं कन्कायै स्वाहा, शरयूं रक्तायै स्वाहा, वरयूं कृष्णायै स्वाहा, लरयूं सुप्रभायै स्वाहा, ररयूं अतिरक्तायै स्वाहा, यरयूं बहुरूपायै स्वाहा।

अङ्गों के लिये हवन— ॐ सहस्रार्चिषे हृदयाय स्वाहा। इसी प्रकार स्वस्तिपूर्णाय शिरसे स्वाहा। उत्तिष्ठपुरुषाय शिखायै स्वाहा। धूमव्यापिने कवचाय स्वाहा। सप्तजिह्वाय नेत्रत्रयाय स्वाहा। धनुर्धराय अस्त्राय स्वाहा।

मूर्तियों के लिये हवन— ॐ अग्नये जातवेदसे स्वाहा। इसी प्रकार अग्नये सप्तजिह्वाय स्वाहा, अग्नये हव्यवाहनाय स्वाहा, अग्नये अश्वोदराय स्वाहा, अग्नये वैश्वानराय स्वाहा, अग्नये कौमारतेजसे स्वाहा, अग्नये विश्वमुखाय स्वाहा, अग्नये देवमुखाय स्वाहा। जिह्वा, अङ्ग, मूर्तिमन्त्रों से एक-एक आहुति प्रदान करे।

तब दश दिक्पालों और उनके दश अस्त्रों के लिये एक-एक आहुति से हवन करे— ॐ लं इन्द्राय स्वाहा इन्द्राय इदं न मम। इसी प्रकार अग्नये स्वाहा अग्नये इदं न मम, यमाय स्वाहा यमाय इदं न मम, निर्ऋतये स्वाहा निर्ऋतये इदं न मम, वरुणाय स्वाहा वरुणाय इदं न मम, वायवे स्वाहा वायवे इदं न मम, कुबेराय स्वाहा कुबेराय इदं न मम, ईशानाय स्वाहा ईशानाय इदं न मम, ब्रह्मणे स्वाहा ब्रह्मणे इदं न मम, अनन्ताय स्वाहा अनन्ताय इदं न मम, वज्राय स्वाहा वज्राय इदं न मम, शक्तये स्वाहा शक्तये इदं न मम, दण्डाय स्वाहा दण्डाय इदं न मम, खड्गाय स्वाहा खड्गाय इदं न मम, पाशाय स्वाहा पाशाय इदं न मम, अङ्कुशाय स्वाहा अङ्कुशाय इदं न मम, गदायै स्वाहा गदायै इदं न मम, शूलाय स्वाहा शूलाय इदं न मम, पद्माय स्वाहा पद्माय इदं न मम, चक्राय स्वाहा चक्राय इदं न मम। इस प्रकार उन-उन नामों से एक-एक आहुति देकर सर्वत्र उनके-उनके उद्देश्य से क्षेत्र-निर्धारण करे।

इनसे हवन के बाद स्रुव में आज्य लेकर चार बार निक्षेप करके चारों बार स्रुव को अधोमुख करके स्रुचा के मुख पर रखकर उसे उठाकर पूर्वोक्त अग्निमन्त्र में स्वाहा के स्थान पर वौषट् कहकर हवन करे— ॐ स्वाहा, ॐ श्रीं स्वाहा, ॐ श्रीं ह्रीं स्वाहा, ॐ श्रीं ह्रीं क्लीं स्वाहा, ॐ श्रीं ह्रीं क्लीं ग्लौं स्वाहा, ॐ श्रीं ह्रीं क्लीं ग्लौं गं स्वाहा, ॐ श्रीं ह्रीं क्लीं ग्लौं गं गणपतये स्वाहा, ॐ श्रीं ह्रीं क्लीं ग्लौं गं गणपतये वरवरद स्वाहा, ॐ श्रीं ह्रीं क्लीं ग्लौं गं गणपतये वरवरद सर्वजन मे स्वाहा, ॐ श्रीं ह्रीं क्लीं ग्लौं गं गणपतये वरवरद सर्वजन मे वशमानय स्वाहा। इस प्रकार महागणपति मन्त्र के दश भागों से दश आहुति में हवन करे। 'ॐ श्रीं ह्रीं क्लीं ग्लौं गं गणपतये वरवरद सर्वजन मे वशमानय स्वाहा' के समस्त व्यस्त मन्त्र से चार आज्य आहुतियाँ प्रदान करे। इस प्रकार अग्निस्थापन विधि पूर्ण होती है।

इत्थमग्निस्थापनं विधाय नूतनताम्रादिपात्रमस्त्रमन्त्रेण प्रक्षाल्य, तत्र मूलमन्त्रेणाष्टधाभिमन्त्रितांस्तण्डुलान् पञ्चदशप्रसृतिमितान् त्रिःप्रक्षालितानस्त्रमन्त्रं जपन्निक्षिप्य, तत्र गोदुग्धं वाष्पं यावत्तावत् पक्वं भवति तावन्निक्षिप्य, प्रक्षालितेन पात्रेण कवचमन्त्रमुच्चरन् तत्पात्रवदनं पिधाय यदा तद्दुग्धं वाष्पवशादुपर्यायाति तदा मेक्षणेन प्रदक्षिण-मूर्ध्वमवघट्टयन् मूलमन्त्रं स्मरन् प्राङ्मुखो गुरुश्चरुं पचित्वा, शृते तस्मिन् मूलमन्त्रेणाज्यं स्रुवेण निक्षिप्य कवचमन्त्रेण तत्पात्रमवतार्य अस्त्रमन्त्रेणाभिमन्त्रितं कुशास्तरे चरुं निक्षिप्य त्रिधा विभज्यैकं भागं देवाय कुम्भस्थाय निवेद्य, मण्डपपरितः पूर्वमङ्कुरार्पणकर्मणि कृताङ्कुरभाजनानि निक्षिप्य, घृतपूर्णान् पिष्टमयदीपांश्च निधाय, कुण्डसमीपं गत्वा स्वासने समुपविश्य, तत्र वक्ष्यमाणविधिना मूलमन्त्रेणार्घ्यादिपात्रस्थापनं विधाय, कुण्डमध्ये वह्नेर्मुखे पूजाचक्रं विभाव्य, तत्र वक्ष्यमाणविधिना मण्डूकादिपीठमन्त्रैः सम्पूज्य, तत्र देवतामावाह्य वक्ष्यमाणविधिना साङ्गं सावरणं सर्वोपचारैः पूजयेत्। अत्रार्घ्यादिस्नानान्तमग्निपूजावदेव कुण्डाद्बहिः पात्रान्तरे देवमुद्दिश्य कल्पयेत्। अन्यत्सर्वं कुण्डमध्ये एव कल्पयेत्। ततो मूलमन्त्रेण वह्निदेवतयोर्वक्त्रैकीकरणार्थं पञ्चविंशत्याज्याहुतीर्हुत्वा, स्वात्माग्निदेवतानामैक्यं विभावयन् मूलेन नाडीसन्धानार्थमेकादशवारं घृतैर्हुत्वा, षडङ्गावरणदेवतानामेकैकामाहुतिं हुत्वा, प्राङ्निर्मितचरोस्तृतीयांशं नवधा विभज्यैकांशेन मूलेन पञ्चविंशतिधा हुत्वा, प्रागादिदिक्स्थकुण्डेषु ऋत्विग्भिः प्रागुक्तविधिनाष्टादशसंस्कारैः संस्कृतेषु गुरुः स्वकुण्डादग्निमुद्धृत्योद्धृत्य निक्षिपेत्। ऋत्विजश्च स्वस्वकुण्डे वह्निं प्रागुक्तविधिना प्रज्वाल्योपस्थाय परिषेचनपरिस्तरणपरिधिप्रक्षेपणपूजादिभिः सम्यक्परितोष्य, समिद्धे तस्मिन् स्वेष्टदेवतानित्यपूजोक्तविधिना देवमावाह्य, ताम्बूलान्तैरुपचारैः सम्यक् सम्पूज्य वक्त्रैकीकरणनाडीसन्धानाङ्गावरणहोमान्ते मूलमन्त्रेण गुरुणा विभज्य दत्तेन घृतमिश्रेण पायसेन पञ्चविंशतिधा स्वस्वकुण्डे जुहुयुः।

अग्नि-स्थापन के बाद नये ताम्रादि पात्र को अस्त्र मन्त्र से प्रक्षालित करे। मूल मन्त्र के आठ जप से अभिमन्त्रित पन्द्रह अञ्जुली चावल तीन बार प्रक्षालित करके अस्त्रमन्त्र जपकर पात्र में डाले। उसमें गाय का दूध डालकर तब तक पकाये जब तक वाष्प एवं फेन रहे। प्रक्षालित पात्र से कवच मन्त्र कहकर उसके मुख को खोलकर वाष्पफेन के ऊपर आने तक अर्थात् उबाल आने तक उसे देखे। प्रदक्षिण क्रम से उसे चलाये। मूलमन्त्र का स्मरण करते हुये पूर्वमुख होकर गुरु चरु को पकाये। मूलमन्त्र से स्रुवा के द्वारा उसमें आज्य डाले। कवच मन्त्र से उस पात्र को उतार कर अस्त्र मन्त्र से मन्त्रित करे। चरु को कुश पर रखे। उसका तीन भाग करे। एक भाग कुम्भस्थ देवता को निवेदित करे। एक भाग को मण्डप के बाहर पूर्व अङ्कुरार्पण के पात्रों में डाल दे। पिष्टनिर्मित दीपक में घी भरकर रखे। कुण्ड के समीप जाय। अपने आसन पर बैठे। वहाँ वक्ष्यमाण विधि से मूल मन्त्र से अर्घ्य आदि पात्र-स्थापन करे। कुण्डमध्य में अग्निमुख में पूजाचक्र की भावना करे। उसमें मण्डूकादि पीठमन्त्रों से पूजा करे। उसमें देवता को आवाहित करे। वक्ष्यमाण विधि से साङ्ग, सपरिवार देवता का पूजन सभी उपचारों से करे। अर्घ्यादि स्नानपात्र अग्निपूजा के समान कुण्ड के बाहर दूसरे पात्रों में कल्पित करे। अन्य सब कुण्ड के मध्य में ही कल्पित करे। तब मूल मन्त्र से अग्निदेवता के मुखों को एकीकरण के लिये पच्चीस घी की आहुतियाँ डाले। अपने और अग्नि में ऐक्य की भावना करे। मूल मन्त्र से नाड़ीसन्धान के लिये ग्यारह घृताहुतियाँ डाले। षडङ्गावरण देवताओं को एक-एक आहुति प्रदान करे। पूर्वनिर्मित चरु के तृतीयांश का नव भाग करे। एक अंश से पच्चीस हवन मूल मन्त्र से करे।

प्राच्यादि दिशाओं में स्थित कुण्डों में ऋत्विज पूर्वोक्त विधि से अट्ठारह संस्कार करें। संस्कृत कुण्डों में गुरु अपने कुण्ड से अग्नि निकालकर डालें। ऋत्विज भी अपने-अपने कुण्डों में पूर्वोक्त विधि से अग्नि प्रज्वलित करें, उपस्थान करें। परिषेचन, परिस्तरण, परिधि, प्रक्षेपण, पूजादि से सम्यक् परितुष्ट करें। उसमें स्वेष्ट देवता का नित्य पूजोक्त विधि से आवाहन करें। ताम्बूलान्त तक उपचारों से सम्यक् पूजा करें। वक्त्र एकीकरण, नाड़ी-सन्धान, अङ्गावरण एवं हवन के अन्त में गुरु से प्राप्त घृत-मिश्रित पायस से मूल मन्त्र के द्वारा पच्चीस आहुतियों से अपने-अपने कुण्डों में हवन करें।

पूर्वादिदिक्षु बलिदानम्

अथ गुरुः सर्वतोभद्रमण्डलस्य पूर्वादिवीथीचतुष्टये मेषादिराशिस्थानेषु, प्राच्यां मेषवृषौ, आग्नेय्यां मिथुनं, दक्षिणे कर्कटसिंहौ, नैर्ऋते कन्या, पश्चिमे तुलावृश्चिकौ, वायव्ये धनुः, उत्तरे मकरकुम्भौ, ईशाने मीनः, इति विभक्तेषु राशिस्थानेषु राश्यधिनाथेभ्यो ग्रहेभ्यो नक्षत्रेभ्यः करणेभ्यश्च हुतशेषेण पायसेन बलिं दद्यात्। यथा—मेषवृश्चिकस्थानयोः कंखंगंघंङं मेषवृश्चिकराश्यधिपतये मङ्गलाय एष गन्धपुष्पाक्षतयुक्तः पायसबलिर्नमः। एवं चं ५ वृषतुलाराश्यधिपतये शुक्राय एष०। टं ५ मिथुनकन्याराश्यधिपतये बुधाय एष०। यं १० कर्कटराश्यधिपतये सोमाय एष०। अं १६ सिंहराश्यधिपतये सूर्याय एष०। तं ५ धनुर्मीनाधिपतये गुरवे एष०। पं० ५ मकरकुम्भाधिपतये शनैश्चराय एष गन्धपुष्पाक्षतयुक्तः पायसबलिर्नमः। पुनः क्रमेण मेषादिस्थानेषु मेषराश्यंशभूताश्विनीभरणीकृत्तिकापादनक्षत्रदेवताभ्यो दिवानक्तंचरेभ्यः सर्वेभ्यो भूतेभ्यः एष गन्ध० इत्यादि प्राग्वत्। एवं वृषराश्यंशभूतकृत्तिकापादत्रयरोहिणीमृगशिरोर्धनक्षत्रदेवताभ्यो०। मिथुनराश्यंशभूतमृगशिरउत्तरार्धार्द्रापुनर्वसुपादत्रयनक्षत्रदेवताभ्यो०। एवमग्रेऽपि मन्त्रा ऊह्याः। ततो मीनमेषयोरन्तराले ववकरणाय एष० इत्यादि। एवं वृषमिथुनयोरन्तराले बालवाय एष०। मिथुनकर्कयोर्मध्ये कौलवाय०। सिंहकन्ययोर्मध्ये तैतिलाय०। कन्यातुलयोर्मध्ये गराय०। वृश्चिकधन्वोर्मध्ये वणिजे०। धनुर्मकरयोर्मध्ये विष्टये एष गन्धाक्षतपुष्पयुतपायसबलिर्नमः, इति बलिं दद्यात्। अत्र राशिद्वयाधिपतीनां राशिद्वयस्थानेऽपि बलिर्देयः इति सम्प्रदायः। ततो गुरुः कुम्भस्थाय देवायोत्तरापोशानादिनीराजनान्तं वक्ष्यमाणविधिना कृत्वा स्तुत्वा प्रणम्य क्षमापयेत्। ततस्तृतीयं भागं शिष्येण सह गुरुर्भुक्त्वा स्वयमाचान्तः स्वाचान्ताय शिष्याय षडङ्गन्यासयोगेन सकलीकृताय प्रादेशमात्रं यथोक्तहृन्मन्त्रेणाष्टधाभिमन्त्रितं दन्तकाष्ठं दद्यात्। शिष्योऽपि तेन दन्तधावनं विधाय, दन्तकाष्ठं प्रक्षाल्य पुरतः परित्यज्याचम्य गुरोः समीपं गच्छेत्। ततो गुरुः शिष्यं शिखाबन्धनेन मूलमन्त्राभिमन्त्रितेन संरक्ष्य, तेन सार्धं वेद्यां कुशास्तरणे तस्यां रात्रौ शयनं कुर्यादित्यधिवासः।

अत्र प्राक्प्रोक्तविधिनोर्ध्वाम्नायाद्याम्नायदेवतानां दीक्षायां तत्तन्मन्त्रहोमस्तत्तद्देवतापूजनक्रम ऋत्विग्भिर्विधेयः। नवग्रहपूजा तु आगमोक्तैर्वैदिकमन्त्रैर्वा विधेया ईशानकोणवेद्यां पृथगेवेति सम्प्रदायः। 'पञ्चषट्कूटविद्याभ्यां शोधितं बहुवासरैः' इति क्रमे प्रोक्तक्रमेणैव दीक्षाप्रयोगक्रमः साधीयान् तत्राङ्गत्वेनान्यमन्त्राकथनात्। षड्दर्शनाङ्गभूतप्रधानविद्यादीक्षाविधौ तु षड्दर्शनाङ्गत्वेन ये ये मन्त्रा अभिहितास्तद्रीत्यैवर्त्विक्साधकैर्होमजपपूजादयो विधेयाः। गुरुणापि तथैव साङ्गोपाङ्गपूर्णरूपेणोपदेशः कार्यः। पूर्णाभिषेकविधिमग्रे तत्प्रकरणे वक्ष्यामः। वैदिकदर्शनप्राधान्येन यत्रोपदेशस्तत्र श्रुतिस्मृत्युक्तविधिनैव विशेषो बोद्धव्यः, अन्यत्साम्यम्।

तदनन्तर गुरु सर्वतोभद्र मण्डल-स्थित देवताओं का पूजन करें। पूर्वादि वीथिचतुष्टय में, मेषादि राशिस्थानों में, पूर्व में मेष-वृष को, आग्नेय में मिथुन को, दक्षिण में कर्क-सिंह को, नैर्ऋत्य में कन्या को, पश्चिम में तुला-वृश्चिक को, वायव्य में धनु को, उत्तर में मकर-कुम्भ को, ईशान में मीन को बलि प्रदान करें. विभक्त राशिस्थानों में 'राश्यधिनाथेभ्यो ग्रहेभ्यो नक्षत्रेभ्यो करणेभ्यश्च' कहकर हुतशेष पायस से बलि प्रदान करें। जैसे—

मेष-वृश्चिक स्थान में कं खं गं घं ङं मेषवृश्चिकराश्यधिपतये मङ्गलाय एष गन्धपुष्पाक्षतयुक्त पायसबलिर्नमः। इसी प्रकार चं छं जं झं ञं वृषतुलाराश्यधिपतये शुक्राय एष गन्धाक्षतपुष्पयुक्त पायसबलिर्नमः। टं ठं डं ढं णं मिथुनकन्या-

राश्यधिपतये बुधाय एष गन्धाक्षतपुष्पयुक्त पायसबलिर्नमः। य र ल व श ष स ह ळं क्ष कर्कटराश्यधिपतये सोमाय एष गन्धाक्षतपुष्पयुक्त पायसबलिर्नमः। अ आ इ ई उ ऊ ऋ ॠ लृ ॡ ए ऐ ओ औ अं अः सिंहराश्यधिपतये सूर्याय एष गन्धाक्षतपुष्पयुक्त पायसबलिर्नमः। त थ द ध न धनुर्मीनाधिपतये गुरवे एष गन्धाक्षतपुष्पयुक्त पायसबलिर्नमः। प फ ब भ म मकरकुम्भाधिपतये शनैश्चराय एष गन्धपुष्पाक्षतयुक्त पायसबलिर्नमः।

पुनः क्रम से मेषादि स्थानों में मेषराश्यंशभूताश्विनीभरणीकृत्तिकापादनक्षत्रदेवताभ्यो दिवानक्तञ्चरेभ्यः सर्वेभ्यो भूतेभ्यः एष गन्धाक्षतपुष्पयुक्त पायसबलिर्नमः, वृषराश्यंशभूतकृत्तिकापादत्रयरोहिणीमृगशिरोऽर्धनक्षत्रदेवताभ्यो दिवानक्तञ्चरेभ्यो सर्वेभ्यो भूतेभ्यः एष गन्धाक्षतपुष्पयुक्त पायसबलिर्नमः, मिथुनराश्यंशभूतमृगशिर उत्तरार्धं आर्द्रा पुनर्वसुपादत्रयनक्षत्रदेवताभ्यो दिवानक्तञ्चरेभ्यो सर्वेभ्यो भूतेभ्यः एष गन्धाक्षतपुष्पयुक्त पायस बलिर्नमः कहकर बलि प्रदान करे। इसी प्रकार आगे भी तत्तत् मन्त्रों से नक्षत्र-देवताओं को बलि दें। तब मीन-मेष के अन्तराल में बवकरणाय एष० वृष मिथुन अन्तराल में बालवाय० एष०। मिथुन-कर्क के मध्य में कौलवाय०। सिंह कन्या के मध्य में तैतिलाय०। कन्या-तुला के मध्य में गराय०। वृश्चिक-धनु के मध्य में वणिजे० धनु मकर के मध्य में विष्टये एष गन्धाक्षतपुष्पयुतपायसबलिर्नमः—इस प्रकार बलिदान देवे। यहाँ दो राशियों के अधिपतियों को राशिद्वय स्थानों में भी बलि देनी चाहिये, यही सम्प्रदायगत सिद्धान्त है।

तब गुरु कुम्भस्थ देवता को उपचारोपशमनादि से नीराजन तक वक्ष्यमाण विधि से पूजा करके स्तुति करके क्षमापन करे। तब तृतीय भाग को गुरु शिष्य के सहित खाकर स्वयं आचमन करके आचमन किये हुये शिष्य को षडङ्ग न्यासयोग से सकलीकरण किये हुये बित्ताभर के दतुवन को हृन्मन्त्र के आठ जप से मन्त्रित करके प्रदान करे। शिष्य भी दतुवन करके दतुवन को धोकर अपने सामने फेंक दे। तदनन्तर आचमन करके गुरु के निकट जाय। तब गुरु शिष्य के शिखाबन्धन को मूलमन्त्र से अभिमन्त्रित करके संरक्षित करे। शिष्य के साथ वेदी के बगल में गुरु कुश पर ही उस रात्रि में शयन करे। यही अधिवास की प्रक्रिया होती है।

गणेशपूजा

अथ वैदिकदर्शनदीक्षायां आदौ गणाधिपपूजादियण्डपपूजाप्रयोगः। तत्रादौ गणेशपूजा— यजमान आसनोपर्युपविश्याचम्य प्राणायामत्रयं कृत्वा, कुशाक्षतान् हस्ते गृहीत्वा सङ्कल्पं कुर्यात्। तद्यथा—अद्येत्यादिमासपक्षाद्युल्लेखानन्तरं करिष्यमाणामुकदेवतामन्त्रदीक्षाकर्मणि प्रत्यूहशान्तये गणपतिपूजनमहं करिष्ये, इति सङ्कल्प्यावाहनादिषोडशोपचारैः 'गणानां त्वा' इति मन्त्रेण गणपतिं सम्पूज्य बद्धाञ्जलिः प्रार्थयेत्।

वक्रतुण्ड महाकाय सूर्यकोटिसमप्रभ। अविघ्नं कुरु मे देव सर्वकार्येषु सर्वदा ॥१॥

पूजा सम्पूर्णतां यातु वाचयित्वा विसर्जयेत्। इति।

गणपति-पूजा—वैदिक दर्शन दीक्षा में पहले गणाधिप पूजादि करके मण्डप पूजा करे। यजमान आसन पर बैठकर आचमन करके तीन प्राणायाम करे। हाथ में कुश-अक्षत लेकर सङ्कल्प करे, जैसे—अद्येत्यादि कहकर मास-पक्ष आदि का उल्लेख करते हुये 'करिष्यमाणामुकदेवतामन्त्रदीक्षाकर्मणि प्रत्यूहशान्तये गणपतिपूजनमहं करिष्ये' कहे। सङ्कल्प-आवाहनादि षोडशोपचार से 'गणानां त्वा' मन्त्र से गणपति का पूजन कर हाथ जोड़कर प्रार्थना करे—

वक्रतुण्ड महाकाय सूर्यकोटिसमप्रभ। अविघ्नं कुरु मे देव सर्वकार्येषु सर्वदा॥

'पूजा सम्पूर्णतां यातु' कहकर विसर्जन कर दे।

गौर्यादिमातृकापूजा

ततः पीठेऽक्षतपुञ्जेषु गौर्यादिषोडशमातृका ब्राह्म्यादिसप्तमातृकाश्च पूजयेत्। तास्तु—

गौरी पद्मा शची मेधा सावित्री विजया जया। देवसेना स्वधा स्वाहा मातरो लोकमातरः ॥१॥

धृतिस्तुष्टिस्तथा पुष्टिरात्मनः कुलदेवता। ब्राह्मी माहेश्वरी चैव कौमारी वैष्णवी तथा ॥२॥

वाराही च तथेन्द्राणी चामुण्डा सप्त मातरः। इति।

पूजाप्रकारस्तु—पूजोपकरणान्युपकल्प्य प्राङ्मुख उपविश्य कुशयवतिलान्यादाय, अद्येहेत्यादि० करिष्यमाणमन्त्रदीक्षाङ्गभूततया गौर्यादिषोडशमातृपूजनं ब्राह्म्यादिसप्तमातृपूजनं च करिष्ये, इति सङ्कल्प्य, अक्षतैः 'ॐ भूर्भुवःस्वः गौरीहागच्छ इह तिष्ठे'त्यावाह्य स्वशाखोक्तमन्त्रेण प्रतिष्ठाप्य गौर्यै नमः, इदमासनमित्यादिरीत्या पदार्थानुसमयेन सर्वाः प्रत्येकमुत्तरसंस्थाः पूज्याः। एवं ब्राह्म्याद्या अपि। यदा तु मातॄणां गणदेवतात्वं तदा प्रत्येकं नाम गृहीत्वा गौर्यादिभ्य इति चोक्त्वा युगपत्पूजयेत्, एवं ब्राह्म्याद्या अपि। ततः स्वाचारतो 'वसोः पवित्रमसी'ति कुण्ड्यलग्नाः पञ्च सप्त वा घृतेन धाराः कुर्यात्। तत्पूजनमपि केचिदाहुः। ततः शान्तिपाठः। ततो यथाचारं वृद्धिश्राद्धं सङ्कल्पपूर्वकं स्वशाखोक्तं कुर्यात्।

गौरी आदि मातृका-पूजा—तब पीठ पर अक्षतपुंज से गौर्यादि षोडश मातृका एवं ब्राह्मी आदि सप्त मातृकाओं का पूजन करे। षोडश मातृकाओं में गौरी, पद्मा, शचि, मेधा, सावित्री, विजया, जया, देवसेना, स्वधा, स्वाहा, मातृ, लोकमातृ, धृति, तुष्टि, पुष्टि और कुलदेवता आते हैं। सप्तमातृका में ब्राह्मी, माहेश्वरी, कौमारी, वैष्णवी, वाराही, इन्द्राणी और चामुण्डा आती हैं

पूजा-प्रकार—पूजोपकरण जुटाकर पूर्वमुख बैठे। हाथ में कुश-यव-तिल आदि लेकर सङ्कल्प करे—'अद्येहेत्यादि० करिष्यमाणमन्त्रदीक्षाङ्गभूततया गौर्यादिषोडशमातृपूजनं ब्राह्म्यादिसप्तमातृपूजनं च करिष्ये'। अक्षत से ॐ भूर्भुव स्व गौरी इहागच्छ इह तिष्ठ कहकर आवाहन करे। स्वशाखोक्त मन्त्र से प्रतिष्ठा करे। 'गौर्यै नम इदं आसनं' इत्यादि रीति से उपलब्ध उपचारों से प्रत्येक का पूजन उत्तरोत्तर संस्थित रूप में करे इसी प्रकार ब्राह्मी आदि का भी पूजन करे। जहाँ मातृकाओं का गणदेवतात्व है, वहाँ प्रत्येक का नाम लेकर गौर्यादिभ्य कहकर एक साथ पूजा करे। इसी प्रकार ब्राह्मी आदि का भी पूजन करे। तब अपने आचारानुसार 'वसो पवित्रमसि' से कुण्डी में पाँच या सात घृतधार डाले। तब शान्तिपाठ करे। तब यथाचार सङ्कल्पपूर्वक वृद्धिश्राद्ध स्वशाखोक्त विधि से करे।

पुण्याहवाचनम्

ततः पुण्याहवाचनम्—तच्चावनिकृतजानुमण्डल इत्यादि पुण्याहं भवन्तो ब्रुवन्त्विति त्रीन् ब्राह्मणान् श्रावयेत्। ते च पुण्याहमिति त्रिः प्रतिब्रूयुः। ॐ स्वस्ति भवन्तो ब्रुवन्त्विति त्रिः। ॐ स्वस्ति इति त्रिः प्रतिवचनम्। ॐ ऋद्धिं भवन्तो ब्रुवन्त्विति त्रिः। ॐ ऋध्यतामिति त्रिः प्रतिवचनम्। ततो मण्डपाद्बहिः पश्चिमदेशे उपलिप्ते यजमानः प्राङ्मुख उपविश्याचम्य प्राणानायम्य, अद्येहेत्यादि अमुकदेवतामन्त्रदीक्षाकर्मकर्तुमाचार्यर्त्विजां वरणमहं करिष्ये इति सङ्कल्प्य, आचार्यमुदङ्मुखमुपवेश्य सिताम्बरहेमकुण्डलसूत्रकेयूरकण्ठाभरणाभिरामं कृत्वा बद्धाञ्जलिः, 'दीक्षादाने त्वं मे गुरुर्भव' इति प्रार्थ्य, भवानि इति तेनोक्ते, अमुकप्रवरान्वितामुकगोत्रममुकवेदान्तर्गतामुकशाखाध्यायिनममुकशर्माणममुकप्रवरान्वितामुकगोत्रोऽमुकशर्माहम् एभिर्गन्धपुष्पाक्षतताम्बूलहेमाभरणाङ्गुलीयकवासोभिरमुकमन्त्रदीक्षादाने गुरुत्वेन त्वां वृणे। वृतोऽस्मीति स वदेत्। एवं पूर्वकुण्डे गायत्रीहोमार्थमेकमाग्नेयदक्षिणनैर्ऋतपश्चिमवायव्यसौम्येशानकुण्डेषु होमार्थं सप्त ब्राह्मणान्, एवं नव ब्राह्मणान् वृणुयात्। ततः पूर्वद्वारपालनार्थं द्वावृग्वेदिनौ, दक्षिणद्वारपालनार्थं द्वौ यजुर्वेदिनौ, पश्चिमद्वारपालनार्थं द्वौ सामगौ, उत्तरद्वारपालनार्थं द्वावथर्वाणौ, एवमष्टौ पृथक्पृथग्वृणुयात्। वरणवाक्यं प्राग्वदेव। एवं पुस्तकाचार्यं वृणुयात्। अत्र द्वारपालकास्तु सर्वदर्शनसाधारणाः। ततः शुक्लाम्बरधरः शुक्लमाल्यानुलेपनः सपत्नीकः सशिष्यर्त्विक् आचार्यो मङ्गलघोषे जायमाने सम्पूर्णकलशहस्तो 'भद्रं कर्णेभिः' इत्यादिमन्त्रघोषेण मण्डपं प्रदक्षिणीकृत्य, पश्चिमद्वारेण प्रविश्य मण्डपान्तः पश्चिमदेशे उपविश्याचम्य प्राणानायम्य, देशकालौ स्मृत्वा करिष्यमाणदीक्षादानाङ्गतया अद्य गणेशपूजामण्डपदेवतास्थापनादि करिष्ये, इति सङ्कल्प्य षोडशोपचारैर्गणेशं प्रपूज्य गौरसर्षपान् सर्वतो मण्डपान्तर्विकिरेत्। तत्र मन्त्रा रक्षोघ्नाः—

यदत्र संश्रितं भूतं स्थानमाश्रित्य सर्वदा। स्थानं त्यक्त्वा तु तत्सर्वं यत्रस्थं तत्र गच्छतु ॥१॥
अपक्रामन्तु भूतानि पिशाचाः सर्वतो दिशम्। सर्वेषामविरोधेन ब्रह्मकर्म समारभे ॥२॥

इति पञ्चगव्येन कुशैः सर्वत्र सर्वतः प्रोक्षयेत् 'शुचि वो हव्ये'ति 'आपो हि ष्ठे'ति ऋचा। ततः कृताञ्जलिः स्वस्त्ययनं तार्क्ष्यमिति मन्त्रद्वयं जपेत्।

तदनन्तर पुण्याहवाचन करने के लिये तीन ब्राह्मणों से कहे। तीन बार 'पुण्याहवाचन किया' ऐसा वे ब्राह्मण कहें। तदनन्तर यजमान उनसे तीन बार 'कल्याण हो' कहने के लिये कहे और वे ब्राह्मण भी उसका उत्तर दें। तदनन्तर उनसे अपनी समृद्धि की कामना करने के लिये कहे और वे ब्राह्मण भी वैसा ही करें। तब मण्डप के बाहर पश्चिम में उपलिप्त भूमि पर यजमान पूर्वमुख बैठे। आचमन प्राणायाम करे 'अद्येहेत्यादि अमुकदेवतामन्त्रदीक्षाकर्मकर्तुमाचार्यमृत्विजो वरणमहं करिष्ये' कहकर सङ्कल्प करे। आचार्य को उत्तरमुख बैठाकर श्वेत वस्त्र सोने का कुण्डल, सूत्र, केयूर, कण्ठाभरण देकर हाथ जोड़कर कहे—'दीक्षादाने त्वं मे गुरुर्भव'। 'गुरु भवानि' ऐसा गुरु के कहने पर शिष्य अमुकप्रवरान्वित-अमुकगोत्रममुकवेदान्तर्गतामुकशाखाध्यायिनममुकशर्माणममुकप्रवरान्वितामुकगोत्रोऽमुकशर्माऽहम् एभिर्गन्धपुष्पाक्षतताम्बूलहेमाभरणाङ्गुलीयकवासोभि: अमुकमन्त्रदीक्षादाने गुरुत्वेन त्वा वृणे' कहे। तब गुरु कहे—वृतोऽस्मि। पूर्वकुण्ड में गायत्री हवन के लिये एक एवं आग्नेय दक्षिण नैर्ऋत्य पश्चिम वायव्य सौम्य ईशान कुण्डों में हवन के लिये सात ब्राह्मणों के साथ कुल नव ब्राह्मणों का वरण करे। तब पूर्व द्वारपाल के लिये दो ऋग्वेदियों, दक्षिण द्वारपाल के लिये दो यजुर्वेदियों, पश्चिम द्वारपाल के लिये दो सामवेदियों एवं उत्तर द्वारपाल के लिये दो अथर्ववेदियों अलग-अलग वरण करे। इसी प्रकार पुस्तकाचार्य का वरण करे। यहाँ द्वारपालक सर्वदर्शनसाधारण होते हैं। तब श्वेत वस्त्रधारी श्वेत माला अनुलेपनयुक्त सपत्नीक सशिष्य ऋत्विक आचार्य मङ्गल घोष करके सम्पूर्ण कलश हाथ में लेकर 'भद्रं कर्णेभि' इत्यादि मन्त्रघोष करते हुए मण्डप की प्रदक्षिणा करें। तब पश्चिम द्वार से मण्डप में प्रवेश करके पश्चिम देश में बैठकर आचमन प्राणायाम कर देश-काल का स्मरण करके कहे—करिष्यमाणदीक्षादानाङ्गतया अद्य गणेशपूजामण्डपदेवतास्थापनादि करिष्ये। ऐसा सङ्कल्प करके षोडशोपचारों से गणेश की पूजा करके पीले सरसों को मण्डप में बिखेर दें। तदनन्तर निम्न रक्षोघ्न मन्त्र का पाठ करे—

यदत्र संश्रितं भूतं स्थानमाश्रित्य सर्वदा। स्थानं त्यक्त्वा तु तत्सर्वं यत्रस्थं तत्र गच्छतु।
अपक्रामन्तु भूतानि पिशाचाः सर्वतो दिशम्। सर्वेषामविरोधेन ब्रह्मकर्म समारभे।

कुशों से पञ्चगव्य से सभी ओर प्रोक्षण करते हुये 'शुचि वो हव्ये', 'आपो हिष्ठा' ऋचा का उच्चारण करे। तब हाथ जोड़कर स्वस्त्ययन एवं 'तार्क्ष्य०' मन्त्र का पाठ करे।

मण्डपदेवतास्थापनपूजाप्रयोगः

ततः पूर्वस्यां दिशि मण्डपद्वाराद्बहिर्हस्तमात्रे वटतोरणमाश्वत्थं वा सुदर्शननामकं सुशोभननामकं वा शङ्खाङ्कितम् 'अग्निमीळे पुरोहित'मिति निधाय नाम्ना, सम्पूज्य चन्दनादिचर्चितं कृत्वा राहुं बृहस्पतिं तत्र न्यसेत्। तत्रैकः कलशः स्थाप्यः। तत्र मन्त्राः—'महीद्यौ'रिति भूमिं स्पृशन् प्रार्थ्य, 'ओषधयः स'मिति यवान् क्षिप्त्वा, 'आकलशेष्वि'ति 'आजिघ्र कलश'मिति वा कलशं निधाय, 'इमं मे गङ्गे' इति जलेनापूर्य, 'गन्धद्वारां' इति गन्धं 'या ओषधी'रिति सर्वौषधीः, 'ओषधयः स'मिति यवान्, 'काण्डात्काण्डा'दिति दूर्वाः, 'अश्वत्थे वो' इति पञ्चपल्लवान्, 'स्योना पृथिवि' इति पञ्च मृदः 'याः फलिनी'रिति फलम्, 'स हि रत्नानी'ति पञ्च रत्नानि, 'हिरण्यरूप'मिति हिरण्यं क्षिप्त्वा 'युवा सुवासा' इति वस्त्रेण रक्तसूत्रेण च मुखे वेष्टयेत्। 'पूर्णा दर्वी'त्युपरि धान्यपूर्णशरावं निधाय तत्र ध्रुवमावाह्य पूजयेत्। ततो दक्षिणे औदुम्बरं वा सुभद्रं विकटं वा चक्राङ्कितं तोरणं 'इषे त्वोर्जे त्वा' इति निधाय नाम्ना पूर्ववत् सम्पूज्य चन्दनादिचर्चितं कृत्वा सूर्यमङ्गारकं च न्यसेत्। ततः पूर्ववत् कलशं स्थापयित्वा तत्र धरामावाह्य पूजयेत्। ततः पश्चिमे प्लाक्षमौदुम्बरं वा सुहोत्रं सुप्रभं पद्माङ्कितं तोरणं 'शन्नो देवी'रिति निधाय नाम्ना पूर्ववत् सम्पूज्य चन्दनादिचर्चितं कृत्वा शुक्रं बुधं च तत्र न्यसेत्। पूर्ववत् कलशं निधाय वाक्पतिमावाह्य पूजयेत्। तत उत्तरे

वटमाश्वत्थं पालाशं वा पूर्णसुकर्म सुभीम वा गदाङ्कितं तोरणम् 'अग्न आयाहि' इति निधाय नाम्ना सम्पूज्य चन्दनादिचर्चितं कृत्वा सोमकेतुशनीस्तत्र न्यसेत्। ततः पूर्ववत् कलशं निधाय तत्र विघ्नेशमावाह्य पूजयेत्। ततः पुनः पूर्वद्वारे द्वारशाखाद्वये कलशद्वयं दध्यक्षतभूषितं पूर्ववन्मन्त्रैः स्थापयेत्। प्रतिकलशं मन्त्रावृत्तिः। ऐरावतकलशद्वयं न्यस्य पूजयेत्। तत्र ऋग्वेदिनौ ऋत्विजौ —

ऋग्वेदः पद्मपत्राक्षो गायत्र्यः सोमदेवता। अत्रिगोत्रस्तु विप्रेन्द्र शान्तिपाठं मखे कुरु ॥१॥

इति प्रार्थ्य प्रत्येकमग्निमीळे इति गन्धादिना पूजयेत्। ततः—

एह्येहि सर्वामरसिद्धसाध्यैरभिष्टुतो वज्रधरामरेश। संवीज्यमानोऽप्सरसां गणेन रक्षाध्वरं नो भगवन् नमस्ते ॥१॥

भो इन्द्रेहागच्छेह तिष्ठेति इन्द्रं साङ्गं सपरिवारं सायुधं सशक्तिकं द्वारकलशे आवाह्य तत्र 'त्रातारमिन्द्र'मितीन्द्रं सम्पूज्य, 'आशुः शिशान' इति पीता पताका पीतं च ध्वजद्वयमपि पञ्चहस्तदण्डमुच्छ्रयेत्। 'इन्द्रं वो विश्वतस्परि' इति वा मन्त्रः। तत्र सहस्राक्षं मत्तैरावणस्थितं पीतकिरीटकुण्डलधरं दक्षिणवामकरस्थवज्रोत्पलमिन्द्रं ध्यात्वा,

इन्द्रः सुरपतिः श्रेष्ठो वज्रहस्तो महाबलः। शतयज्ञाधिपो देवस्तस्मै नित्यं नमोनमः ॥१॥

इति नत्वा इन्द्राय साङ्गाय सपरिवाराय सायुधाय सशक्तिकायैतं माष(भक्त)बलिं समर्पयामि, इति बलिं दद्यात्।

तब पूर्व दिशा के मण्डप द्वार से एक हाथ की दूरी पर वट या अश्वत्थ का सुदृढ़ नामक या सुशोभन नामक तोरण शङ्खाङ्कित बनाकर 'अग्निमीळे पुरोहितं' नाम से पूजन करके चन्दनादि चर्चित करते हुये राहु एवं बृहस्पति का वहाँ न्यास करे। वहाँ एक-एक कलश स्थापित करे। तदनन्तर भूमि-स्पर्श करके 'ओषधय:' मन्त्र से प्रार्थना करे। यव डाले। 'आकलशे' या 'आजिघ्र कलशं' से कलश में यव डाले।

'इमं मे गंगे' से कलश में जल भरे। 'गन्धद्वारां' से गन्ध डाले। 'या ओषधी' से सर्वौषधी डाले। 'ओषधय:' से यव डाले। 'काण्डात् काण्डात्' से दूर्वा डाले। 'अश्वत्थे वो' से पञ्चपल्लव डाले। 'स्योना पृथिवि' से पञ्चमृत्तिका डाले। 'याः फलिनी' से फल, 'स हि रत्नानि' से पञ्चरत्न, 'हिरण्यरूप' से सोना डालकर। युवा सुवासा' से वस्त्र और लाल धागा से मुख वेष्टित करे। 'पूर्णा दर्वि' से उसके ऊपर धान्य पूर्ण शराव रखे। तब ध्रुव से आवाहन करके पूजन करे। तब दक्षिण में गूलर या सुभद्र विकट या चक्राङ्कित तोरण 'इषे त्वोर्जे त्वा' से बनाये। नाम से पूर्ववत् पूजन करे, चन्दनादि से चर्चित करे। वहाँ पर सूर्य और मङ्गल का न्यास करे। तब पूर्ववत् कलश-स्थापन करके उसमें पृथ्वी का आवाहन करके पूजन करे। तब पश्चिम में पाकड़, गूलर, सुहोत्र सुप्रभ पद्माङ्कित तोरण कौशाम्बी देवी' से स्थापित करके नाम से पूर्ववत पूजा करे चन्दनादि से चर्चित करे और वहीं पर शुक्र बुध का न्यास करे। पूर्ववत् कलश रखकर वाक्पति का आवाहन-पूजन करे। तब उत्तर में वट, पीपल या पलाश का पूर्ण सुकर्म सुभीम या गदाङ्कित तोरण का स्थापन 'अग्न आयाहि' करे। नाम से पूजन कर उसे चन्दन-चर्चित करे। वहाँ सोम-केतु-शनि का न्यास करे। तब पूर्ववत् कलश रखकर उसमें विघ्नेश का आवाहन-पूजन करे। तब पुनः पूर्व द्वार के शाखाद्वय पर कलशद्वय को दधि-अक्षत से भूषित कर पूर्ववत् मन्त्रों से स्थापित करे। प्रति कलश मन्त्रावृत्ति करे। ऐरावत के लिये कलशद्वय का न्यास करे, पूजन करे। वहाँ ऋग्वेदी ऋत्विजों से शान्तिपाठ करने की प्रार्थना करे।

शान्तिपाठ-हेतु प्रार्थना करके प्रत्येक का 'अग्निमीळे' मन्त्र बोलकर गन्धादि से पूजा करे। तब मूलोक्त 'एह्येहि' बोलते हुये 'भो इन्द्र इहागच्छ इह तिष्ठ' कहकर साङ्ग सपरिवार सायुध सशक्तिक, इन्द्र का द्वारकलश में आवाहन करके 'त्रातारमिन्द्र' से इन्द्र की पूजा करे। 'आशुः शिशान' से पीत पताका एवं पीला ध्वज पाँच हाथ लम्बे बाँस में लगाकर 'इन्द्रं वो विश्वतस्परि' मन्त्र से स्थापित करे। तब सहस्राक्ष, मत्त ऐरावत पर आरूढ़, पीत किरीट कुण्डलधारी, दक्षिण-वामकरस्थ वज्रधारी इन्द्र का ध्यान करके 'इन्द्रः सुरपतिः' इत्यादि मन्त्र से इन्द्र को प्रणाम कर 'इन्द्राय साङ्गाय सपरिवाराय सायुधाय सशक्तिकायैतं माषभक्तबलिं समर्पयामि' कहकर बलि प्रदान करे।

तत आचम्याग्नेये गत्वा पूर्ववत् कलशं निधाय तत्र पुण्डरीकं पूजयित्वाऽमृतं च प्रपूज्य,

एह्येहि वैश्वानर हव्यवाह मुनिप्रवीरैरभितोऽभिजुष्ट ।
तेजोवता लोकगणेन सार्धं ममाध्वरं पाहि कवे नमस्ते ॥१॥

भो अग्ने इहागच्छेह तिष्ठेति साङ्गं सपरिवारं सायुधं सशक्तिमग्निं कलशे आवाह्य, 'त्वन्नो अग्ने' इत्यग्निं गन्धादिना प्रपूज्य, 'अग्निं दूत'मिति रक्तां पताकां रक्तध्वजं पञ्चहस्तदण्डमुच्छ्रयेत्। ततः छागस्थं रक्तं दक्षिणवामकरधृतरक्त-कमण्डलुं यज्ञोपवीतिनमग्निं ध्यात्वा,

आग्नेयः पुरुषो रक्तः सर्वदेवमयोऽव्ययः। धूम्रकेतुरजोऽध्यक्षस्तस्मै नित्यं नमोनमः ॥१॥

इति नत्वा साङ्गायेत्यादिकमुक्त्वा अग्नये एतं माषभक्तबलिं समर्पयामि इति बलिं दद्यात्।

तत आचम्य दक्षिणे गत्वा प्रतिद्वारशाखं पूर्ववत् कलशद्वयं संस्थाप्य वामनगजं तत्र न्यस्य पूजयेत्। ततो यजुर्वेदविदावृत्विजौ—

कातराक्षो यजुर्वेदस्त्वेहुभो विष्णुदैवतः। काश्यपेयस्तु विप्रेन्द्र शान्तिपाठं मखे कुरु ॥१॥

इति प्रत्येकं प्रार्थ्य गन्धादिना 'इषे त्वोर्जे त्वा' इति पूजयेत्। ततः—

एह्येहि वैवस्वत धर्मराज सर्वामरैरर्चित धर्ममूर्ते ।
शुभाशुभानन्दशुचामधीश शिवाय नः पाहि मखं नमस्ते ॥१॥

भो यमेहागच्छेह तिष्ठेति साङ्गादिविशिष्टं यममावाह्य 'यमाय सोम'मिति गन्धादिभिः पूजयित्वा कृष्णां पताकां कृष्णं च ध्वजं पञ्चहस्तायतं दण्डं 'आयं गौ'रित्युच्छ्रयेत्। ततो महिषारूढं धृतदण्डपाशदक्षिणवामकरद्वयं कृष्णाञ्जनचयनिभमग्निसमनयनं यमं ध्यात्वा,

महामहिषमारूढं दण्डहस्तं महाबलम्। आवाहयामि यज्ञेऽस्मिन् पूजा मे प्रतिगृह्यताम् ॥१॥

इति नत्वा, साङ्गायेत्यादि यमायैतं माषभक्तबलिं समर्पयामि, इति बलिं दद्यात्।

ततः आचम्य नैर्ऋत्यां पूर्ववत् कलशं स्थापयित्वा कुमुदगजं दुर्जयं च पूजयित्वा,

एह्येहि रक्षोगणनायकस्त्वं विशालवेतालपिशाचसङ्घैः ।
ममाध्वरं पाहि पिशाचनाथ लोकेश्वरस्त्वं भगवन् नमस्ते ॥१॥

भो निर्ऋते इहागच्छेह तिष्ठेति साङ्गादिविशिष्टमावाह्य 'मो षु ण' इति 'असुन्वत'मिति वा निर्ऋतिं गन्धादिभिः पूजयित्वा नीलां पताकां ध्वजं च पञ्चहस्तदण्डं 'मो षु ण' इत्युच्छ्रयेत्। ततो नरारूढं खड्गहस्तं नीलवर्णं नीलाभरणं निर्ऋतिं ध्यात्वा,

नरारूढं महाकायं खड्गहस्तं महाबलम्। नीलं रक्षोगणैर्जुष्टं नीलाभरणभूषितम् ॥१॥
निर्ऋतिं खड्गहस्तं च सर्वलोकैकनायकम्। आवाहयामि यज्ञेऽस्मिन् पूजा मे प्रतिगृह्यताम् ॥२॥

इति नत्वा, साङ्गायेत्यादि निर्ऋतये एतं माषभक्तबलिं समर्पयामि, इति बलिं दद्यात्।

इसके बाद आचमन करके आग्नेय कोण मे जाकर पूर्ववत् कलश रखकर पुण्डरीक का पूजन करके अमृत का पूजन करते हुये निम्न श्लोक का पाठ करे—

एह्येहि वैश्वानर हव्यवाह मुनिप्रवीरैरभितोऽभिजुष्ट। तेजोवता लोकगणेन सार्धं ममाध्वरं पाहि कवे नमस्ते ।।

तदनन्तर 'भो अग्ने इहागच्छ इह तिष्ठ' कहकर साङ्ग सपरिवार सायुध, सशक्तिक अग्नि का आवाहन कलश मे करे। 'त्वन्नो अग्ने' मन्त्र द्वारा गन्धादि से उसका पूजन करे। 'अग्निं दूतं' से लाल पताका एवं लाल ध्वज पाँच हाथ उच्च दण्ड मे

लगाकर स्थापित करे। तब आग्नेय रक्त का दक्षिण-वामकरस्थित कमण्डलु में धारण किये हुये यज्ञोपवीतयुक्त अग्नि का ध्यान करके निम्नवत् प्रणाम करे—

आग्नेय पुरुषो रक्तः सर्वदेवमयोऽव्ययः। धूम्रकेतुरजोऽध्यक्षस्तस्मै नित्यं नमोनमः।।

तदनन्तर साङ्गाय इत्यादि कहकर 'आग्नेय एतं माषभक्तबलिं समर्पयामि' कहकर बलि प्रदान करे।

तब आचमन करके दक्षिण द्वार पर जाकर प्रत्येक द्वारशाखा पर एक-एक कलश स्थापित करे। वहाँ पर वामन गज का न्यास करके पूजन करे। तब यजुर्वेदी ऋत्विज निम्न श्लोक पढ़े—

कातराक्षो यजुर्वेदस्त्रिष्टुभो विष्णुदैवतः। काश्यपेयस्तु विप्रेन्द्र शान्तिपाठं मखे कुरु।

इस श्लोक से प्रत्येक की प्रार्थना करके 'इषे त्वोर्जेत्वा' मन्त्र द्वारा गन्धादि से पूजा करे। तब यमराज का निम्न मन्त्र से आवाहन करे—

एह्येहि वैवस्वत धर्मराज सर्वामरैरर्चित धर्ममूर्ते। शुभाशुभानन्दशुचामधीश शिवाय नः पाहि मखं नमस्ते।।

भो यम इहागच्छ इह तिष्ठ कहकर साङ्गादिविशिष्ट यम का आवाहन करके 'यमाय सोम' मन्त्र से गन्धादि से पूजन करे। काला पताका एवं काला ध्वज पाँच हाथ लम्बे दण्ड में लगाकर 'आयं गौः' मन्त्र से खड़ा करे। तब महिषारूढ़, दक्षिण वाम कर में दण्ड-पाशधारी, कृष्ण वर्ण, अग्निसम नयन यम का निम्नवत् ध्यान करे—

महामहिषमारूढं दण्डहस्तं महाबलम्। आवाहयामि यज्ञेऽस्मिन् पूजां मे प्रतिगृह्यताम्।।

उपर्युक्त श्लोक से प्रणाम करके 'साङ्गाय सपरिवाराय सायुधाय सशक्तिकाय यमाय एतं माषभक्तबलिं समर्पयामि' कहकर बलि प्रदान करे। तब आचमन करके नैर्ऋत्य में पूर्ववत् कलश स्थापित करके उसमें कुमुद गज और दुर्जय का पूजन करे। तदनन्तर—

एह्येहि वैवस्वत धर्मराज सर्वामरैरर्चित धर्ममूर्ते। शुभाशुभानन्दशुचामधीश शिवाय नः पाहि मखं नमस्ते।।

कहते हुये भो निर्ऋते इहागच्छ इह तिष्ठ इत्यादि कहकर साङ्गादि विशिष्ट दोनों का आवाहन करके 'मो षु ण' या 'असुन्वन्तं' से निर्ऋति का गन्धादि से पूजन कर नीला पताका एवं ध्वज को पाँच हाथ के दण्ड में लगाकर 'मा षु ण' कहकर खड़ा करे। तब नरारूढ़, खड्गहस्त, नील वर्ण, नीलाभरण-भूषित निर्ऋति का निम्नवत् ध्यान करे—

नरारूढं महाकायं खड्गहस्तं महाबलम्। नीलं रक्षोगणैर्जुष्टं नीलाभरणभूषितम्।।
निर्ऋतिं खड्गहस्तं च सर्वलोकैकनायकम्। आवाहयामि यज्ञेऽस्मिन् पूजां मे प्रतिगृह्यताम्।।

निर्ऋति को विहित मन्त्र से प्रणाम करके बलि प्रदान करे।

तत आचम्य पश्चिमद्वारे प्रतिशाखं कलशद्वयं पूर्ववत् स्थापयित्वा अञ्जनं दिग्गजं न्यस्य पूजयेत्। ततः सामवेदविदावृत्विजौ

सामवेदस्तु पिङ्गाक्षो जागतः शक्रदैवतः। भारद्वाजस्तु विप्रेन्द्र शान्तिपाठं मखे कुरु ॥१॥

इति प्रार्थ्य गन्धादिना 'अग्न आयाहि' इति पूजयेत्। ततः—

एह्येहि यादोगणवारिधीनां गणेन पर्जन्य सहाप्सरोभिः।
विद्याधरेन्द्रामरगीयमान पाहि त्वमस्मान् भगवन् नमस्ते ॥१॥

भो वरुणेहागच्छेह तिष्ठेति साङ्गादिविशिष्टं वरुणमावाह्य, 'तत्त्वा यामि' इति गन्धादिभिः पूजयित्वा श्वेतां पताकां ध्वजं च 'इमं मे वरुण' इत्युच्छ्रयेत्। ततो मकरस्थं पाशहस्तं शुक्लवर्णं किरीटधारिणं वरुणं ध्यात्वा,

पाशहस्तं च वरुणमर्णसां निधिमीश्वरम्। आवाहयामि यज्ञेऽस्मिन् वरुणाय नमोनमः ॥१॥

इति नत्वा साङ्गायेत्यादि वरुणायैतं माषभक्तबलिं समर्पयामि, इति बलिं दद्यात्।

तत आचम्य वायव्यां पूर्ववत् कलशं निधाय पुष्पदन्तं सिद्धार्थं च सम्पूज्य,

एह्येहि यज्ञे मम रक्षणाय मृगाधिरूढः सह सिद्धसङ्घैः।
प्राणाधिपः कालकवेः सहाय गृहाण पूजां भगवन् नमस्ते ॥१॥

भो वायो इहागच्छेह तिष्ठेति साङ्गादिविशिष्टं वायुमावाह्य 'तव वायवृतस्पते' इति गन्धादिना पूजयित्वा धूम्रां पताकां ध्वजं च 'वायो शत'मित्युच्छ्रयेत्। ततो मृगाधिरूढं चित्राम्बरध्वजधरदक्षवामहस्तं वायुं ध्यात्वा,

वायुमाकाशगं चैव पवनं वेगवाहनम्। आवाहयामि यज्ञेऽस्मिन् पूजेयं प्रतिगृह्यताम् ॥१॥
अनाकारो महौजाश्च यश्चादृष्टगतिर्दिवि। तस्मै पूज्याय जगतो वायवेऽहं नमामि च ॥२॥

इति नत्वा साङ्गायेत्यादि वायवे एतं माषभक्तबलिं समर्पयामि, इति बलिं दद्यात्।

तत आचम्योत्तरद्वारे प्रतिद्वारशाखं कलशद्वयं प्राग्वत् स्थापयित्वा सार्वभौमं दिग्गजं न्यस्य प्रपूज्याथर्व-विदावृत्विजौ,

बृहन्नेत्रोऽथर्ववेदोऽनुष्टुभो गुरुदैवतः। वैशम्पायन विप्रेन्द्र शान्तिपाठं मखे कुरु ॥१॥

इति प्रार्थ्य 'शन्नो देवी'रिति गन्धादिना प्रपूज्य, ततः

एह्येहि यक्षेश्वर यज्ञरक्षां विधत्स्व नक्षत्रगणेन सार्धम्।
सर्वौषधीभिः पितृभिः सहैव गृहाण पूजां भगवन् नमस्ते ॥१॥

भो सोमेहागच्छेह तिष्ठेति साङ्गादिविशिष्टं सोममावाह्य 'सोमो धेनुं' 'वयं सोमे'ति वा पूजयित्वा हरितां श्वेतां पताकां ध्वजं च 'आप्यायस्व' इति न्यस्य नरयुतविमानस्थं कुण्डलहारकेयूररुचिरं वरगदाधरदक्षिणवाम-भुजद्वयं मुकुटिनं महोदरं महाकायं हरितवर्णं कुबेरं ध्यात्वा,

सर्वनक्षत्रमध्ये तु सोमो राजा व्यवस्थितः। तस्मै सोमाय देवाय नक्षत्रपतये नमः ॥१॥

इति नत्वा साङ्गायेत्यादि सोमायैतं माषभक्तबलिं समर्पयामि, इति बलिं दद्यात्।

तब आचमन करके पश्चिम द्वार में प्रतिशाखा पर एक-एक कलश का स्थापन करे एवं वहीं पर अञ्जन दिग्गज का न्यास करके उनका पूजन करे। तब सामवेदी ऋत्विज निम्न श्लोक से उनकी प्रार्थना करे—

सामवेदस्तु पिङ्गाक्षो जागत शक्रदैवतः। भारद्वाजस्तु विप्रेन्द्र शान्तिपाठं मखे कुरु॥

प्रार्थना करके गन्धादि से 'अग्न आयाहि' मन्त्र द्वारा उनकी पूजा करे। तदनन्तर—

एह्येहि यादोगणवारिधीनां गणेन पर्जन्य सहाप्सरोभिः। विद्याधरेन्द्रामरगीयमान पाहि त्वमस्मान् भगवन् नमस्ते॥

भो वरुण इहागच्छ इह तिष्ठ कहकर साङ्गादिविशिष्ट वरुण का आवाहन करे। 'तत्त्वा यामि' मन्त्र द्वारा गन्धादि से पूजा करे। श्वेत पताका एवं ध्वज 'इमं मे वरुण' कहकर फहराये। तब मकरारूढ पाशहस्त शुक्ल वर्ण किरीटधारी वरुण का निम्नवत् ध्यान करे—

पाशहस्तं च वरुणमर्णसां निधिमीश्वरम्। आवाहयामि यज्ञेऽस्मिन् वरुणाय नमोनमः।

प्रणाम विहित मन्त्र द्वारा वरुण को बलि प्रदान करे।

तब आचमन करके वायव्य में पूर्ववत् कलश स्थापित करके पुष्पदन्त और सिद्धार्थ का उसमें पूजनकर निम्न श्लोक का पाठ करे—

एह्येहि यज्ञे मम रक्षणाय मृगाधिरूढः सह सिद्धसङ्घैः। प्राणाधिपः कालकवेः सहाय गृहाण पूजां भगवन् नमस्ते॥

भो वायो इहागच्छ इह तिष्ठ कहकर साङ्गादिविशिष्ट वायु का आवाहन करे। 'तव वायवृतस्पते' कहकर गन्धादि से उनकी पूजा करे। तदनन्तर धूम्र वर्ण की पताका एवं ध्वजा 'वायो शत' कहकर खड़ा करे। तब मृगाधिरूढ़, चित्राम्बर एवं

ध्वजधारी वायु का ध्यान करके निम्न मन्त्र पढ़ते हुये उन्हें प्रणाम करे—

वायुमाकाशगं चैव पवनं वेगवाहनम्। आवाहयामि यज्ञेऽस्मिन् पूजेयं प्रतिगृह्यताम्।।
अनाकारो महौजाश्च यश्चादृश्यगतिर्दिवि। तस्मै पूज्याय जगतो वायवेऽहं नमामि च।।

तदनन्तर विहित मन्त्र से वायुदेव को बलि प्रदान करे।

तदनन्तर आचमन करके उत्तर द्वार के प्रतिशाखा में पूर्ववत् कलश स्थापित करके वहाँ सार्वभौम दिग्गज का ध्यान करने के बाद अथर्ववेदी ऋत्विज निम्न श्लोक का पाठ करे—

बृहस्त्वोऽथर्ववेदोऽनुष्टुभो गुरुर्देवत । वैशम्पायन विप्रेन्द्र शान्तिपाठं मखे कुरु।।

प्रार्थना करके 'शन्नो देवी' मन्त्र से गन्धादि से उनका पूजन करे। तदनन्तर

एह्येहि यक्षेश्वर यज्ञरक्षां विधत्स्व नक्षत्रगणेन सार्धम्। सर्वौषधीभिः पितृभिः सहैव गृहाण पूजां भगवन् नमस्ते।।

मन्त्र पढ़ते हुये भो सोम इहागच्छ इह तिष्ठ कहकर साङ्गादि-विशिष्ट सोम का आवाहन करे। 'सोमो धेनुं' या 'वयं सोम' से उनकी पूजा करे। हरे रङ्ग की पताका एवं ध्वजा 'आप्यायस्व' से खड़ा करके नरयुत विमानस्थ कुण्डल-हार-केयूर से भूषित वर-गदाधारी, मुकुटधारी, महोदर, महाकाय, हरित वर्ण कुबेर का ध्यान करके निम्न मन्त्र से प्रणाम करे -

सर्वनक्षत्रमध्ये तु सोमो राजा व्यवस्थितः । तस्मै सोमाय देवाय नक्षत्रपतये नमः ।।

प्रणाम करके विहित मन्त्र से बलि प्रदान करे।

तत आचम्य ऐशान्यां पूर्ववत् कलशं निधाय सुप्रतीकं दिग्गजं मङ्गलं च तत्र सम्पूज्य

एह्येहि विश्वेश्वर नस्त्रिशूलखट्वाङ्गधारिन् स्वगणेन सार्धम्।
लोकेश यज्ञेश्वर यज्ञसिद्ध्यै गृहाण पूजां भगवन् नमस्ते ।।१।।

भो ईशानेहागच्छेह तिष्ठेति साङ्गादिविशिष्टमीशानमावाह्य 'तमीशान'मिति गन्धादिना प्रपूज्य श्वेतां सर्ववर्णां वा पताकां ध्वजं च 'अभि त्वा देव सवितः' इत्युच्छ्रयेत्। ततो वृषारूढं दक्षिणवामहस्तधृतवरत्रिशूलं त्रिनेत्रं शुभ्रवर्णमीशानं ध्यात्वा,

वृषस्कन्धसमारूढं शूलहस्तं त्रिलोचनम् । आवाहयामि यज्ञेऽस्मिन् पूजा मे प्रतिगृह्यताम् ।।१।।
सर्वाधिपो महादेव ईशानः शुक्ल ईश्वरः । शूलपाणिर्विरूपाक्षस्तस्मै नित्यं नमोनमः ।।२।।

इति नत्वा साङ्गायेत्यादि ईशानायैतं माषभक्तबलिं समर्पयामि, इति बलिं दद्यात्। तत आचम्य ईशानपूर्वयोर्मध्येऽधः

एह्येहि पातालधरामरेन्द्र नागाङ्गनाकिन्नरगीयमान् ।
यक्षोरगेन्द्रामरलोकसङ्घैरनन्त रक्षाध्वरमस्मदीयम् ।।१।।

भो अनन्तेहागच्छेह तिष्ठेति साङ्गादिविशिष्टमनन्तमावाह्य 'आयं गौ'रिति गन्धादिभिरभ्यर्च्य मेघवर्णां श्वेतां पताकां ध्वजं च 'आयं गौ'रित्युच्छ्रयेत्।

अनन्तशयनासीनं फणसप्तकमण्डितम् । पद्मशङ्खधरोर्ध्वाधोदक्षभागकरद्वयम् ।।१।।
चक्रगदाधरोर्ध्वाधोवामभागकरद्वयम् ।

इति नीलवर्णमनन्तं ध्यात्वा,

योऽसावनन्तरूपेण ब्रह्माण्डं सचराचरम् । पुष्पवद्धारयेन्मूर्ध्नि तस्मै नित्यं नमोनमः ।।१।।

इति नत्वा साङ्गायेत्यादि अनन्तायैतं माषभक्तबलिं समर्पयामि, इति बलिं दद्यात्।

तत आचम्य पश्चिमनैर्ऋतमध्ये ऊर्ध्वम्

एह्येहि सर्वाधिपते सुरेन्द्रलोकेन सार्धं पितृदेवताभिः।
सर्वस्य धातास्यमितप्रभावो विशाध्वरं नः सततं शिवाय ॥१॥

भो ब्रह्मन्निहागच्छेह तिष्ठेति साङ्गादिविशिष्टं ब्रह्माणमावाह्य 'ब्रह्म जज्ञान'मिति गन्धादिभिरभ्यर्च्य रक्ता पताकां ध्वजं च तेनैवोच्छ्रित्य, अक्षसूत्रकुशमुष्टिधरोर्ध्वाधोदक्षिणकरं स्रुवकमण्डलुधरोर्ध्वाधोवामकरद्वयं चतुर्मुख श्मश्रुलं जटिलं लम्बोदर रक्तवर्णं ब्रह्माणं ध्यात्वा,

पद्मयोनिश्चतुर्मूर्तिर्वेदावासः पितामहः। यज्ञाध्यक्षश्चतुर्वक्त्रस्तस्मै नित्यं नमोनमः ॥१॥

इति नत्वा साङ्गायेत्यादि ब्रह्मणे एत माषभक्तबलिं समर्पयामि, इति बलिं दद्यात्।

तदनन्तर आचमन करके ईशान मे पूर्ववत् कलश स्थापन करके सुप्रतीक, दिग्गज और मङ्गल की उसमे पूजा करके निम्न श्लोक को पढ़कर उनका आवाहन करे—

एह्येहि विश्वेश्वर नस्त्रिशूलखट्वाङ्गधारिन् स्वगणेन सार्धम्। लोकेश यज्ञेश्वर यज्ञसिद्ध्यै गृहाण पूजां भगवन् नमस्ते।।

भो ईशान इहागच्छ इह तिष्ठ कहकर साङ्गादिविशिष्ट ईशान का आवाहन करके। 'तमीशान' मन्त्र से गन्धादि से उनकी पूजा करे। श्वेत वर्ण पताका एवं ध्वजा को 'अभि त्वा देव सवित' कहकर खड़ा करे। तब वृषारूढ, वर-त्रिशूलधारी, त्रिनेत्र शुभ्रवर्ण ईशान का ध्यान करते हुये निम्न मन्त्र से उन्हे प्रणाम करे—

वृषस्कन्धसमारूढं शूलहस्तं त्रिलोचनम्। आवाहयामि यज्ञेऽस्मिन् पूजा मे प्रतिगृह्यताम्।।
सर्वाधिपो महादेव ईशान शुक्ल ईश्वर। शूलपाणिर्विरूपाक्षस्तस्मै नित्यं नमोनमः।।

प्रणाम करके विहित मन्त्र से उन्हे बलि प्रदान करे। तदनन्तर आचमन करके ईशान-पूर्व मध्य मे नीचे—

एह्येहि पातालधरामरेन्द्र नागाङ्गनाकिन्नरगीयमान् यक्षोरगेन्द्रामरलोकसङ्घैरनन्त रक्षाध्वरमस्मदीयम्।।

पढ़ते हुये भो अनन्त इहागच्छ इह तिष्ठ कहकर साङ्गादिविशिष्ट अनन्त का आवाहन करे। 'आय गौ' मन्त्र से गन्धादि से उनका अर्चन करके मेघवर्ण श्वेत पताका एवं ध्वजा को 'आय गौ' मन्त्र बोलकर खड़ा करे। इसके बाद—

अनन्तशयनासीन फणसप्तकमण्डितम्। पद्मशङ्खधरोर्ध्वाधोदक्षभागकरद्वयम्।।
चक्रगदाधरोर्ध्वाधोवामभागकरद्वयम्।

से नील वर्ण अनन्त का ध्यान करके निम्न मन्त्र से प्रणाम करे—

योऽसावनन्तरूपेण ब्रह्माण्डं सचराचरम्। पुष्पवद्धारयेन्मूर्ध्नि तस्मै नित्यं नमोनमः।।

प्रणाम करके विहित मन्त्र से उन्हे बलि प्रदान करे।

तदनन्तर आचमन करके पश्चिम-नैर्ऋत्य मध्य मे ऊपर की ओर—

एह्येहि सर्वाधिपते सुरेन्द्रलोकेन सार्धं पितृदेवताभिः। सर्वस्य धातास्यमितप्रभावो विशाध्वरं नः सततं शिवाय।।

कहकर भो ब्रह्मन इहागच्छ इह तिष्ठ बोलकर साङ्गादि विशिष्ट ब्रह्मा का आवाहन करे। 'ब्रह्म जज्ञान' मन्त्र से गन्धादि द्वारा उनका पूजन करे। लाल पताका एवं ध्वजा पूर्ववत् खड़ा करे। अक्षसूत्रकुशमुष्टिधारी एवं स्रुव-कमण्डलुधारी चतुर्मुख घनी दाढ़ी, लम्बा पेट, रक्त वर्ण ब्रह्मा का निम्नवत् ध्यान करे—

पद्मयोनिश्चतुर्मूर्तिर्वेदावासः पितामहः। यज्ञाध्यक्षश्चतुर्वक्त्रस्तस्मै नित्यं नमोनमः।।

प्रणाम करके विहित मन्त्र से बलि प्रदान करे।

तत आचम्य मण्डपमध्ये चामरकिङ्किणीयुतात्युच्चदण्डो वा दशषोडशहस्तदण्डो वा दशहस्तदीर्घस्त्रिहस्त-विस्तारः पञ्चहस्तदीर्घो हस्तविस्तारो वा महाध्वजो विचित्रवर्णः 'इन्द्रस्य वृष्णो' इति संस्थाप्यः। 'ब्रह्म जज्ञान'मिति

च तत्रैव ब्रह्मपूजनं कार्यम्। ततो मण्डपषोडशस्तम्भेषु सर्वेभ्यो देवेभ्यो नमः। वंशेषु किन्नरेभ्यो नमः। ततः पूर्वस्यां दिशि किञ्चिद्भूमिमुपलिप्योपविश्य,

त्रैलोक्ये यानि भूतानि स्थावराणि चराणि च। ब्रह्मविष्णुशिवैः सार्धं रक्षां कुर्वन्तु तानि मे ॥१॥
देवदानवगन्धर्वा यक्षराक्षसपन्नगाः। ऋषयो मनवो गावो देवमातर एव च ॥२॥
सर्वे ममाध्वरे रक्षां प्रकुर्वन्तु मुदान्विताः। ब्रह्मा विष्णुश्च रुद्रश्च क्षेत्रपाला गणैः सह ॥३॥
रक्षन्तु मण्डपं सर्वे घ्नन्तु रक्षांसि सर्वतः। इति।

त्रैलोक्यस्थेभ्यः स्थावरेभ्यो भूतेभ्यो नमः। त्रैलोक्यस्थेभ्यश्चरेभ्यो भूतेभ्यो नमः। ब्रह्मणे नमः। विष्णवे नमः, शिवाय नमः, देवेभ्यो नमः, दानवेभ्यो नमः, गन्धर्वेभ्यो नमः, यक्षेभ्यो नमः, राक्षसेभ्यो नमः, पन्नगेभ्यो नमः, ऋषिभ्यो नमः, मनुष्येभ्यो नमः, गोभ्यो नमः, देवमातृभ्यो नमः। इति प्रत्येकं सम्पूज्य पुष्पादियुतं पूर्ववन्मन्त्रैरेव तस्यां भूमावेवैतेभ्य एव माषभक्तबलिं दद्यात्।

तत आचार्यः सर्त्विक् प्रक्षालितपादपाणिराचान्तः प्राग्द्वारेण मण्डपं प्रविश्य दक्षिणद्वारपश्चिमदेशे उपविश्याचम्य 'भो ब्राह्मणा यथाविहितं कर्म कुरुध्व'मिति ब्रूयात्। ततो गुरुर्महावेद्युपरि पुष्पाणि विकीर्य उपरि च वितानं पञ्चवर्णं फलपुष्पोपशोभितं वेदियानं बध्नीयात्। ग्रहवेद्यां च तन्मानं बध्नीयात्, सर्वतोभद्रं च लिखेत्। पूर्णाभिषेकदीक्षायां तु नवहस्तपरिमितमध्यवेद्यां श्रीचक्रं तत्तदिष्टदेवताचक्रं वा रचयेत्।

नवहस्तं त्रिहस्तं वा श्रीचक्रमभिषेचने। स्थण्डिले नित्यपूजायां हस्तमात्रं प्रशस्यते ॥१॥

इति तन्त्रराजवचनात्। तस्मिन् पक्षे ग्रहवेदी सर्वतोभद्रमण्डलवेदी चैशान्यां क्रियते। गुरुमण्डलवेदी वायव्ये, मिथुनपूजावेदी आग्नेये, तद्दिननित्यापूजावेदी वास्तुमण्डलसमीपे, इति सम्प्रदायः। तथात्रावसरे आचार्यः स्वगृह्योक्तविधिना स्वकुण्डेऽग्निस्थापनं कुर्यात्। तेनैव क्रमेणान्यकुण्डेष्वपि स्वस्वशाखोक्तविधिना ऋत्विजोऽग्निस्थापनं कुर्युः। गुरुश्च सर्वकर्माध्यक्षस्तिष्ठेत्। एवमग्निषु प्रणीतेषु गुरुर्ग्रहवेद्यां सर्वतोभद्रे च, अद्येहेत्यादि दीक्षादानाख्यकर्माङ्गतया मण्डपदेवतास्थापनं करिष्ये, इति सङ्कल्प्य ब्रह्मादीन् स्थापयेत्। मध्ये ब्रह्मा 'ब्रह्म जज्ञानं' गौतमो वामदेवो ब्रह्मा त्रिष्टुप् ब्रह्मस्थापने पूजने च विनियोगः। एवमुत्तरत्र, 'ॐ ब्रह्म जज्ञानं'।१। उत्तरे सोमः।२। 'ॐ अभि त्वा देव सवितः'।३। पूर्वे इन्द्रः 'इन्द्रं वो' मधुच्छन्दा इन्द्रो गायत्री।४। आग्नेये अग्निः 'अग्निं' काण्वो मेधातिथिरग्निर्गायत्री 'अग्निं दूतं वृणीमहे'।५। दक्षिणे यमः 'यमाय सोमं' वैवस्वतो यमो यमोऽनुष्टुप्।६। नैर्ऋत्यां निर्ऋतिः 'मोषुणो' घोरः कण्वो निर्ऋतिर्गायत्री।७। पश्चिमे वरुणः 'तत्त्वा यामि' शुनःशेपो वरुणस्त्रिष्टुप्।८। वायव्यां वायुः 'वायो शतं' गौतमो वामदेवो वायुरनुष्टुप्।९। वायुसोममध्येऽष्टौ वसवः 'ज्मया अत्र' मैत्रावरुणो वसिष्ठो वसवस्त्रिष्टुप्।१०। सोमेशानमध्ये एकादश रुद्राः 'आ रुद्रासः' श्यावाश्वस्यैकादश रुद्रा जगती 'आ रुद्रासः'।११। ईशानेन्द्रमध्ये द्वादशादित्याः 'त्यान्नु क्षत्रियान्' साम्मदो (मत्स्यो) मगे द्वादशादित्या गायत्री।१२। इन्द्राग्निमध्ये अश्विनौ 'अश्विना' राहूगणो गौतमोऽश्विनौ उष्णिक्।१३। अग्नियममध्ये विश्वेदेवाः सपैतृकाः 'ओमासः' मधुच्छन्दा विश्वेदेवा गायत्री।१४। यमनिर्ऋतिमध्ये सप्तयक्षाः 'अभि त्वं' वामदेवः सप्तयक्षाः प्रकृतिः 'ॐ अभि त्वं देवं सवितारमोण्योः कविक्रतुमर्चामि सत्यसवं रत्नधामभि प्रियं मतिं कविं मतिम्। ऊर्ध्वा यस्या मतिर्भा अदिद्युतत्सवीमनि हिरण्यपाणिरमिमीत सुक्रतुः कृपा स्वः'।१५। निर्ऋतिवरुणमध्ये भूतनागाः 'आयं' गौः सार्पराज्ञी सर्पा गायत्री 'आयं गौः'।१६। वरुणवायुमध्ये गन्धर्वाप्सरसः 'अप्सरसाम्' एतश ऋष्यशृङ्गो गन्धर्वाप्सरसोऽनुष्टुप्। 'ॐ अप्सरसां गन्धर्वाणां'।१७। ब्रह्मसोममध्ये स्कन्दनन्दीश्वरशूलमहाकालाः 'कुमारं' कुमारः स्कन्दस्त्रिष्टुप् 'कुमारं माता'।१८। 'ऋषभं' ऋषभो वैराजोऽनुष्टुप् 'ऋषभ मा'।१९। ब्रह्मेशानमध्ये दक्षादिः सप्तकोणे वा 'अदितिः' लौक्यो बृहस्पतिर्दक्षोऽनुष्टुप् 'ॐअदितिर्ह्यजनिष्ट'।२०।

ब्रह्मेन्द्रमध्ये दुर्गा विष्णुश्च 'तामग्निवर्णां' सौभरिर्दुर्गा त्रिष्टुप् 'ॐ तामग्निवर्णां'।२१। 'इदं विष्णु:' काण्वो मेधातिथिर्गायत्री 'ॐ इदं विष्णु:'।२२। ब्रह्माग्नेयमध्ये स्वधा 'उदीरतां' शङ्खः स्वधा त्रिष्टुप् 'उदीरतामवर'।२३। ब्रह्मयममध्ये विष्णुमृत्युरोगा: 'परं मृत्यो' सङ्कुसुको मृत्युरोगास्त्रिष्टुप्।२४। ब्रह्मनिर्ऋतिमध्ये गणपति: 'गणानां त्वा' गृत्समदो गणपतिर्जगती।२५। ब्रह्मवरुणमध्ये आप: 'शन्नो' अम्बरीष: सिन्धुद्वीप आपो गायत्री।२६। ब्रह्मवायुमध्ये मरुत: 'मरुतो यस्य' राहूगणो गौतमो मरुतो गायत्री।२७। ब्रह्मण: पादमूले कर्णिकाया: पृथ्वी 'स्योना' मेधातिथिर्भूमिर्गायत्री।२८। तत्रैव गङ्गादिनद्य: 'इमं मे' सिन्धुक्षित् प्रैयमेधो, गङ्गायमुनासरस्वत्यो जगती।२९। तत्रैव सप्त सागरा: 'धाम्नो धाम्नो राजन्नितो वरुण नो मुञ्च। यदापो अघ्न्या इत् वरुणेति शपामहे ततो वरुण नो मुञ्च। मयि वायो मोषधीर्हिंसीरतो विश्वव्यचा भूस्त्वेतो वरुण नो मुञ्च।३०। तदुपरि मेरुं नाम्ना पूजयेत्।

तब आचमन करके मण्डपमध्य में चामर-किङ्किणीयुक्त अत्यन्त उच्च दण्ड में महाध्वज या दश अथवा सोलह हाथ के दण्ड में दश हाथ लम्बा एवं तीन हाथ विस्तृत या पाँच हाथ लम्बा एवं हाथ भर विस्तृत विचित्र वर्ण का महाध्वज 'इन्द्रस्य विष्णो' मन्त्र से स्थापित करे। 'ब्रह्म जज्ञानं' से वहाँ ब्रह्म का पूजन करे। तब मण्डप के सोलह स्तम्भों में 'सर्वेभ्यो देवेभ्यो नम:' से पूजा करे। बाँसों में किन्नरेभ्यो नम: से पूजा करे। तब पूर्व दिशा में थोड़ी भूमि को लीपकर उस पर बैठकर रक्षामन्त्र का निम्नवत् पाठ करे—

> त्रैलोक्ये यानि भूतानि स्थावराणि चराणि च। ब्रह्मविष्णुशिवै: सार्धं रक्षां कुर्वन्तु तानि मे।।
> देवदानवगन्धर्वा यक्षराक्षसपन्नगा: ऋषयो मनवो गावो देवमातर एव च।।
> सर्वे ममाध्वरे रक्षां प्रकुर्वन्तु मुदान्विता:। ब्रह्मा विष्णुश्च रुद्रश्च क्षेत्रपाला गणै: सह।।
> रक्षन्तु मण्डपं सर्वे घ्नन्तु रक्षांसि सर्वत:।।

तदनन्तर निम्न प्रकार से पूजा करे—त्रैलोक्यस्थेभ्य: स्थावरेभ्यो भूतेभ्यो नम:। त्रैलोक्यस्थेभ्यश्चरेभ्यो भूतेभ्यो नम:। ब्रह्मणे नम:। विष्णवे नम:। शिवाय नम:। देवेभ्यो नम:। दानवेभ्यो नम:। गन्धर्वेभ्यो नम:। यक्षेभ्यो नम:। राक्षसेभ्यो नम:। पन्नगेभ्यो नम:। ऋषिभ्यो नम:। मनुष्येभ्यो नम:। गोभ्यो नम:। देवमातृभ्यो नम:। इस प्रकार प्रत्येक को पुष्पादि से पूजा करके पूर्ववत् मन्त्रों से उन्हें भूमि पर ही बलि प्रदान करे।

तब ब्राह्मणों के साथ आचार्य हाथ-पैर धोकर आचमन करके पूर्व द्वार से मण्डप में प्रवेश करे। दक्षिण द्वार के पश्चिम तरफ बैठकर आचमन करे। तब कहे—भो ब्राह्मणा यथाविहितं कर्म कुरुध्वम्। तब गुरु महावेदी पर पुष्प बिखेरे। वेदी के ऊपर पाँच रङ्गों की चाँदनी बनाकर उसे फल-पुष्पों से उपशोभित करे। ग्रहवेदी के ऊपर उसी के मान की चाँदनी बाँधे। तब सर्वतोभद्र बनाये। पूर्णाभिषेक दीक्षा में नव हाथ परिमित मध्य वेदी बनती है, उसमें श्रीचक्र एवं इष्टदेवता का चक्र बनाये। जैसा कि तन्त्रराज में कहा भी गया है कि श्रीचक्र के अभिषेक में नौ हाथ अथवा तीन हाथ की वेदी बनानी चाहिये। साथ ही नित्य पूजा में एक हाथ की स्थण्डिल ही उपयुक्त होती है।

इसके अनुसार ग्रहवेदी एवं सर्वतोभद्रमण्डल वेदी ईशान में बनाना चाहिये, गुरु मण्डल वेदी वायव्य में, मिथुन पूजा वेदी आग्नेय में, उस दिन की नित्या पूजा वेदी वास्तु मण्डल के समीप बनाये। यह सम्प्रदाय-मत है। इस अवसर पर आचार्य स्वगृह्योक्त विधि से अपने कुण्ड में अग्निस्थापन करे। उसी क्रम से अन्य कुण्डों में भी स्व-स्व शाखोक्त विधि से ऋत्विज् अग्निस्थापन करें। गुरु सभी कर्मों के अध्यक्ष रूप में बैठे। इसी प्रकार अग्नि कोण में प्रणीत में ग्रह वेदी में एवं सर्वतोभद्र में सङ्कल्प करके ग्रहादि का स्थापन करे। मध्य में ब्रह्मा, उत्तर में सोम, पूर्व में इन्द्र, आग्नेय कोण में अग्नि, दक्षिण में यम, नैर्ऋत्य में निर्ऋति, पश्चिम में वरुण, वायव्य में वरुण, वायु-सोममध्य में आठ वसु, सोम ईशानमध्य में एकादश रुद्र, ईशान-इन्द्र मध्य में अश्विनी कुमार, अग्नि-यममध्य में विश्वेदेव, निर्ऋति-वरुणमध्य में भूत-नाग, वरुण-वायु मध्य में गन्धर्व-अप्सरायें, ब्रह्म-सोममध्य में स्कन्द-नन्दी ईश्वर-शूल-महाकाल ऋषभ, ब्रह्म-ईशान मध्य में दक्ष आदि अथवा सप्तकोण में अदिति, ब्रह्म

इन्द्रमध्य मे दुर्गा-विष्णु, ब्रह्मा-आग्नेय मध्य मे स्वधा ब्रह्मा-यममध्य म विष्णु-मृत्युरोग, ब्रह्मा-निर्ऋतिमध्य मे गणपति ब्रह्मा-वरुणमध्य मे आप ब्रह्मा-वायुमध्य म मरुत् ब्रह्मा क पादमूल मे पृथ्वी वहीं पर गङ्गादि नदियाँ सप्त समुद्रों उसके ऊपर मेरु का तत्तत् मन्त्रों से पूजन करे।

बाह्ये सोमादिसमीपे क्रमेणायुधानि—गदा० त्रिशूल० वज्र० शक्ति० खड्गं० पाश० अङ्कुशं०। तद्बाह्ये उत्तरादितः—गौतमः भरद्वाजः विश्वामित्रः कश्यपः जमदग्निः वसिष्ठः अत्रिः अरुन्धतीति।८। तद्बाह्ये पूर्वादि ऐन्द्री कौमारी ब्राह्मी वाराही चामुण्डा वैष्णवी माहेश्वरी वैनायकी इत्यष्टौ शक्तयः, एतान् स्वस्वमन्त्रैः प्रतिष्ठाप्य प्रत्येकं सह वा पूजयेत्। एवमग्निं प्रणीय देवतास्थापनवेद्यां ग्रहादिपञ्चाशीतिदेवतास्थापनं कुर्यात्। तत्रायं प्रयोगः—अद्येहेत्यादि दीक्षादानाख्यकर्मणि ग्रहादिपीठदेवतास्थापनमहं करिष्ये। प्रणवस्य परब्रह्मऋषिः परमात्मा देवता देवीगायत्री छन्दः, व्याहृतीनां क्रमेण जमदग्निभरद्वाजभृगवो ऋषयः अग्निवायुसूर्या देवताः देवीगायत्री-देवीउष्णिक्-देवीबृहत्यः छन्दांसि सूर्याद्यावाहने विनियोगः। तत्राग्रपीठमध्ये वर्तुले द्वादशाङ्गुले मण्डले प्राङ्मुखं सूर्यं रक्तपुष्पाक्षतैः आकृष्णेति हिरण्यस्तूप ऋषिः सविता देवता त्रिष्टुप् छन्दः सूर्यावाहने विनियोगः। 'आकृष्णेन' ॐ भूर्भुवःस्वः कलिङ्गदेशोद्भव काश्यपसगोत्र सूर्येहागच्छेत्यावाह्येह तिष्ठेति स्थापयेत्।१। तत आग्नेये चतुरस्रे चतुर्विंशांगुले मण्डले प्राङ्मुखं सोमं श्वेतपुष्पाक्षतैः आप्यायस्वेति गौतमः सोमो गायत्री सोमावाहने विनियोगः। 'ॐ आप्यायस्व०' ॐ भूर्भुवःस्वः यमुनातीरोद्भव आत्रेयसगोत्र सोमेहागच्छेत्यावाह्येह तिष्ठेति स्थापयेत्।२। ततो दक्षिणे त्रिकोणे त्र्यङ्गुले मण्डले दक्षिणमुखं भौमं रक्तपुष्पाक्षतैः अग्निर्मूर्धेति विरूपः आङ्गिरसोऽङ्गारको गायत्री अङ्गारकावाहने विनियोगः। 'ॐ अग्निर्मूर्धा' ॐ भूर्भुवःस्वः सरस्वतीसमुद्भव भारद्वाजसगोत्र भौमेहागच्छेत्यावाह्येह तिष्ठेति स्थापयेत्।३। तत ऐशाने बाणाकारे चतुरङ्गुले मण्डले उदङ्मुखं बुधं पीतपुष्पाक्षतैः उद्बुध्यध्वमिति बुधः सौम्यो बुधस्त्रिष्टुप् बुधावाहने विनियोगः। 'ॐ उद्बुध्यध्वं' ॐ भूर्भुवःस्वः मगधदेशोद्भवात्रेयसगोत्र बुधेहागच्छेत्यावाह्येह तिष्ठेति स्थापयेत् ४। तत उत्तरतो दीर्घचतुरस्रे षडङ्गुले उदङ्मुखं बृहस्पतिं पीतपुष्पाक्षतैः बृहस्पते इति गृत्समदो बृहस्पतिस्त्रिष्टुप् बृहस्पत्यावाहने विनियोगः। 'बृहस्पतेऽति य' ॐ भूर्भुवःस्वः सिन्धुदेशोद्भवाङ्गिरसगोत्र बृहस्पते इहागच्छेत्यावाह्येह तिष्ठेति स्थापयेत्।५। ततः पूर्वे पञ्चकोणे नवाङ्गुले मण्डले प्राङ्मुखं शुक्रं शुभ्रपुष्पाक्षतैः शुक्र इति पाराशरः शुक्रो द्विपदा विराट् शुक्रावाहने विनियोगः। 'ॐ शुक्रः शुशुक्वान्' ॐ भूर्भुवःस्वः भोजराष्ट्देशोद्भव भार्गवसगोत्र शुक्रेहागच्छेत्यावाह्येह तिष्ठेति स्थापयेत्।६। ततः पश्चिमे धनुषि द्व्यङ्गुले मण्डले प्रत्यङ्मुखं शनिं कृष्णपुष्पाक्षतैः शमग्निरिति इरिंबिठिः शनैश्चर उष्णिक् शन्यावाहने विनियोगः। 'शमग्निः' ॐ भूर्भुवःस्वः सौराष्ट्रदेशोद्भव काश्यपसगोत्र शने इहागच्छेत्यावाह्येह तिष्ठेति संस्थापयेत्।७। ततः कृष्णशूर्पमण्डले दक्षिणमुखं राहुं धूम्रपुष्पाक्षतैः कया न इति वामदेवो राहुर्गायत्री विनियोगः। 'ॐ कया नः' ॐ भूर्भुवःस्वः पूर्वदेशोद्भव पाठीनसगोत्र राहो इहागच्छेत्यावाह्येह तिष्ठेति स्थापयेत्।८। ततो वायव्ये ध्वजाकारे मण्डले दक्षिणमुखान् केतून् कृष्णपुष्पाक्षतैः केतुं कृण्वन् इति मधुच्छन्दाः केतवो गायत्री केत्वावाहने विनियोगः। 'ॐ केतुं कृण्वन्' ॐ भूर्भुवःस्वः मध्यदेशोद्भवा जैमिनिगोत्राः केतव इहागच्छतेत्यावाह्येह तिष्ठतेति स्थापयेत्।।९।।

बाहर सोमादि के समीप क्रम से आयुध—गदा, त्रिशूल, वज्र, शक्ति, खड्ग, पाश, अङ्कुश का पूजन करे। उसके बाहर उत्तर से प्रारम्भ करके गौतम, भरद्वाज, विश्वामित्र, कश्यप, जमदग्नि वसिष्ठ, अत्रि अरुन्धति आठ का पूजन करे। उसके बाहर पूर्वादि क्रम से ऐन्द्री कौमारी, ब्राह्मी, वाराही चामुण्डा, वैष्णवी, माहेश्वरी, वैनायिकी—इन आठ की पूजा करे। इन्हें अपने-अपने मन्त्रों से प्रतिष्ठित करके प्रत्येक का अलग अलग या एक साथ पूजन करे। इस प्रकार अग्नि का प्रणयन कर, देवतास्थापन वेदी में ग्रहादि पच्चासी देवता का स्थापन करे। ग्रहवेदी पर अपने सामने के पीठ पर बारह अंगुल के गोलाकार मण्डल में पूर्वमुख सूर्य लाल पुष्पाक्षत से बनाये और उसपर सूर्य को स्थापित करे। आग्नेय चतुरस्र चौबीस अंगुल मण्डल में पूर्वमुख चन्द्र श्वेत पुष्पाक्षत से बनाये और उसी पर सोम का आवाहन करते हुये स्थापित करे।

उसके दक्षिण त्रिकोण मे तीन अंगुल के त्रिकोण मण्डल मे दक्षिणमुख मङ्गल को लाल पुष्पाक्षत से बनाये और उसी मे मंगल का आवाहन कर विहित मन्त्रों द्वारा उनका प्रतिष्ठापन करे। ईशान मे बाणाकार चार अंगुल के मण्डल मे उत्तरमुख बुध को पीले पुष्पाक्षत से बनाये एवं वहीं पर बुध को आवाहित करते हुये विहित मन्त्रों से प्रतिष्ठापित करे। उसके उत्तर में दीर्घ चतुरस्र मण्डल मे उत्तरमुख बृहस्पति को पीले पुष्पाक्षत से बनाकर वहीं पर विहित मन्त्रों से बृहस्पति का आवाहन करके उन्हें यथास्थान प्रतिष्ठापित करे। तब पूर्व पश्चिम कोण मे नव अंगुल के पञ्चकोण मण्डल मे पूर्वमुख शुक्र को आकृति श्वेत पुष्पाक्षत से बनाये एवं विहित मन्त्रों से वहीं पर शुक्र का आवाहन करते हुये उन्हें प्रतिष्ठापित करे। पश्चिम मे धनुषाकार द्व्यङ्गुल मण्डल मे पश्चिममुख शनि को काले पुष्पाक्षत से बनाये एवं विहित मन्त्रों से वहीं पर शनि का आवाहन करते हुये उनका स्थापन करे। कृष्ण वर्ण शूर्पमण्डल मे दक्षिणमुख राहु को धूम्र-पुष्पाक्षत से बनाये एवं वहीं पर विहित मन्त्रों से उनका आवाहन करते हुये स्थापन करे। वायव्य मे ध्वजाकार मण्डल मे दक्षिणमुख केतु को काले पुष्पाक्षत से बनाकर केतु का आवाहन करते हुये उनका स्थापन करे

अधिदेवतास्थापनम्

अथाधिदेवताः श्वेतपुष्पाक्षतैः क्रमात् सूर्यादीनां दक्षिणतः स्थाप्याः। 'त्र्यम्बकं' वसिष्ठो रुद्रोऽनुष्टुप्। विनियोगः सर्वत्र देयः। 'त्र्यम्बकं' ॐ भूर्भुवःस्वः ईश्वर०।१। 'गौरीर्मिमाय' दीर्घतमा उमा जगती सोमदक्षिणे।२। 'यदक्रन्दो' दीर्घतमा स्कन्दस्त्रिष्टुप्।३। 'विष्णो' दीर्घतमा विष्णुस्त्रिष्टुप्।४। 'ब्रह्म जज्ञानं' गौतमो वामदेवो ब्रह्मा त्रिष्टुप्।५। 'इन्द्रं वो' मधुच्छन्दा इन्द्रो गायत्री।६। 'यमाय सोमं' यमो यमोऽनुष्टुप्।७। 'मोषुणो' घोरः कण्वो गायत्री।८। 'उषो वाजं' प्रस्कण्वश्चित्रगुप्तो बृहती।९। एवमेव शुक्लपुष्पाक्षतैर्ग्रहाणां वामे मन्त्रान्ते व्याहृतीरुक्त्वा इहागच्छेह तिष्ठेति चोक्त्वा प्रत्यधिदेवताः स्थापयेत्। 'अग्निं' काण्वो मेधातिथिरग्निर्गायत्री, 'अग्निं दूतं'।१। 'अप्सु' मेधातिथिरापोऽनुष्टुप्।२। 'स्योना' मेधातिथिर्भूमिर्गायत्री।३। 'इदं विष्णुः' मेधातिथिर्विष्णुर्गायत्री।४। 'इन्द्र श्रेष्ठानि' गृत्समद इन्द्रस्त्रिष्टुप्।५। 'इन्द्राणी' वृषाकपिरिन्द्राणी पंक्तिः।६। 'प्रजापते नहि' हिरण्यगर्भः प्रजापतिस्त्रिष्टुप्।७। 'आयं गौः' सार्पराज्ञी सर्पा गायत्री।८। 'ब्रह्म जज्ञानं' गौतमो वामदेवो ब्रह्मा त्रिष्टुप्।९।

अधिदेवता-स्थापन—सूर्यादि के दक्षिण दिशा से प्रारम्भ करते हुये श्वेत पुष्पाक्षत से क्रमश इन अधिदेवताओं को यथास्थान विहित मन्त्रों से स्थापित करे। इसी प्रकार श्वेत पुष्पाक्षत से ग्रहों के बाँये भाग मे मन्त्र के बाद व्याहृति लगाते हुये विहित मन्त्रों से यथास्थान प्रत्यधिदेवताओं को स्थापित करे।

विनायकादिस्थापनम्

ततः शुक्लपुष्पाक्षतैर्विनायकादीन् पञ्च०। 'गणानां त्वा' गृत्समदो गणपतिर्जगती, राहोः (वामे) विनायकम्।१। 'जातवेदसे' कश्यपो दुर्गा त्रिष्टुप्, शनेरुत्तरतो दुर्गा०।२। 'तववायवृतस्पते' आङ्गिरसो वायुर्गायत्री, रवेरुत्तरतो वायुं०। एतान् मन्त्रान् पठन्ति साम्प्रदायिकाः।३। 'आदित्प्रत्नस्य' वत्स आकाशो गायत्री, राहोर्दक्षिणे आकाशम्।४। 'एषो उषा' प्रस्कण्वोऽश्विनौ गायत्री। अश्विनाविहागच्छतेह तिष्ठतेति केतोर्दक्षिणेऽश्विनौ।।५।।

अथ लोकपालाः—'इन्द्र विश्वा जेता' मधुच्छन्दस इन्द्रोऽनुष्टुप्, इन्द्रेहागच्छेह तिष्ठेति पूर्वे इन्द्रं०। एवमुत्तरत्र।१। 'अग्निः' मेधातिथिरग्निर्गायत्री।२। 'यमाय सोम' यमो यमोऽनुष्टुप्।३। 'मोषुणो' घोरः कण्वो निर्ऋतिर्गायत्री।४। 'त्वन्नो अग्ने' वामदेवो वरुणस्त्रिष्टुप्।५। 'तव वायो' व्यश्वो वायुर्गायत्री।६। 'सोमो धेनुं' गौतमः सोमस्त्रिष्टुप्।७। 'तमीशानं' गौतमः सोम ईशानो गायत्री।८। 'सहस्रशीर्षः' नारायणोऽनन्तोऽनुष्टुप्, ईशानपूर्वयोर्मध्येऽनन्तम्०।९। 'ब्रह्म जज्ञानं' गौतमो वामदेवो ब्रह्मा त्रिष्टुप्।१०। नैर्ऋत्यपश्चिमयोर्मध्ये ब्रह्माणम्०।१२। ततः उत्तरे 'क्षेत्रस्य' वामदेवः क्षेत्रपालोऽनुष्टुप्। 'वास्तोष्पते' वसिष्ठो वास्तोष्पतिस्त्रिष्टुप्। ततः—

सामध्वनिशरीरस्त्वं वाहन परमेष्ठिनः। विषपापहरो नित्यमतः शान्तिं प्रयच्छ मे।।१।।

इत्यनेन सोत्तरे गरुत्मन्तमावाह्य। रवेः पूर्वे शेषं, सोमस्याग्रे वासुकिं, भौमाग्रे तक्षकं, बुधोत्तरे कार्कोटकं, बृहस्पतेरग्रे पद्मकं, शनिपश्चिमे शङ्खपालं, राहोः पुरः कम्बलं, केतोः पुरः कुलिकं। पीठात् प्राच्यामश्विन्यादिसप्तनक्षत्राणि, विष्कम्भादिसप्तयोगान् बवबालवकरणे सप्तद्वीपानि ऋग्वेदं च। दक्षिणे पुष्यादिसप्तनक्षत्राणि, धृत्यादिसप्तयोगान् कौलवतैतिले करणे, सप्तसागरान् यजुर्वेदं च। पश्चिमे स्वात्यादिसप्तनक्षत्राणि, वज्रादिसप्तयोगान्, गरवणिजे करणे, सप्तपातालानि सामवेदं च। उत्तरेऽभिजिदादिसप्तनक्षत्राणि, साध्यादिषड्योगान्, विष्टिकरणं, भूरादिसप्तलोकान् अथर्ववेदं च। वायव्ये ध्रुवं सप्तर्षींश्च। अथ यथावकाशं गङ्गादिसप्तसरितः, सप्त कुलाचलान्, अष्टौ वसून्, द्वादशादित्यान्, एकादशरुद्रान्, एकोनपञ्चाशन्मरुतः, षोडश मातृः, षड्ऋतून्, द्वादश मासान्, द्वे अयने, पञ्चदश तिथीन्, षष्टि संवत्सरान्, नागान्सर्पान्, यक्षान्, गन्धर्वान्, विद्याधरान्, अप्सरसः, रक्षांसि, भूतानि, मनुष्यान् इति।

विनायकादि-स्थापन—तदनन्तर पुनः पुष्पाक्षत से विनायक, दुर्गा, वायु, आकाश एवं अश्विनी कुमारों का आवाहन एवं स्थापन करे।

लोकपालों का स्थापन—तदनन्तर पूर्वादि क्रम से यथाविहित मन्त्रों से इन्द्रादि लोकपालों का क्रमशः आवाहन स्थापन करे। लोकपालों के स्थापन के पश्चात् 'सामध्वनिशरीरस्त्वं वाहनं परमेष्ठिनः। विषपापहरो नित्यमतः शान्तिं प्रयच्छ मे' पढ़कर उत्तर में गरुड़ का आवाहन करे। तदनन्तर सूर्य के पूर्व में शेष, चन्द्र के आगे वासुकी, मङ्गल के आगे तक्षक, बुध के उत्तर में कर्कोटक, बृहस्पति के आगे पद्म, शनि के पश्चिम में शङ्खपाल, राहु के आगे कम्बल एवं केतु के आगे कुलिक का आवाहन करे। पीठ के पूर्व में अश्विनी आदि सात नक्षत्र, विष्कम्भादि सात योग, बव-बालव दो करण, सप्त द्वीप एवं ऋग्वेद का आवाहन करे। दक्षिण में पुष्यादि सात नक्षत्र, धृति आदि सात योग, कौलव तैतिल करण, सप्तसागर एवं यजुर्वेद का आवाहन करे। पश्चिम में स्वाति आदि सात नक्षत्र, वज्र आदि सात योग, गर-वणिज करण, सप्त पाताल एवं सामवेद का आवाहन करे। उत्तर में अभिजित आदि सात नक्षत्र, साध्य आदि छः योग, विष्टि करण, भू आदि सात लोक अथर्ववेद का आवाहन करे। वायव्य में ध्रुव एवं सप्तर्षि का आवाहन करे।

यथास्थान गङ्गादि सात नदियाँ, सात कुलाचल, आठ वसु, द्वादश आदित्य, एकादश रुद्र, उनचास मरुत्, षोडश मातृका, छः ऋतु, बारह मास, दो अयन, पन्द्रह तिथि, साठ संवत्सर, नाग, सर्प, यक्ष, गन्धर्व, विद्याधर, अप्सरा, राक्षस, भूत, मनुष्य का आवाहन करे।

कलशाभिमन्त्रणादि

ततो वेद्यैशान्यां कलशं स्थाप्य, तत्र वरुणमावाह्य सम्पूज्याभिमन्त्रयेत्। यथा कलशाभिमन्त्रणम्—

कलशस्य मुखे विष्णुः कण्ठे रुद्रः समाश्रितः। मूले तस्य स्थितो ब्रह्मा मध्ये मातृगणाः स्मृताः॥१॥
कुक्षौ तु सागराः सप्त सप्तद्वीपा वसुन्धरा। ऋग्वेदोऽथ यजुर्वेदः सामवेदो ह्यथर्वणः॥२॥
अङ्गैश्च सहिताः सर्वे कलशं तु समाश्रिताः। अत्र गायत्री सावित्री शान्तिः पुष्टिकरी तथा॥३॥
आयान्तु यजमानस्य दुरितक्षयकारकाः। देवदानवसंवादे मथ्यमाने महोदधौ॥४॥
उत्पन्नोऽसि तदा कुम्भ विधृतो विष्णुना स्वयम्। त्वत्तोये सर्वतीर्थानि देवाः सर्वे त्वयि स्थिताः॥५॥
त्वयि तिष्ठन्ति भूतानि त्वयि प्राणाः प्रतिष्ठिताः। शिवः स्वयं त्वमेवासि विष्णुस्त्वं च प्रजापतिः॥६॥
आदित्या वसवो रुद्रा विश्वेदेवाः सपैतृकाः। त्वयि तिष्ठन्ति सर्वेऽपि यतः कामफलप्रदाः॥७॥
त्वत्प्रसादादिमं यज्ञं कर्तुमीहे जलोद्भव। सान्निध्यं कुरु मे देव प्रसन्नो भव सर्वदा॥८॥ इति।

ततः फलपुष्पमालोल्लसितं वितानं बृहस्पतिदैवतं सूर्यादिभ्य इदं न ममेत्युत्सृज्य ग्रहवेद्युपरि बध्नीयात्। एवं वेदोक्तमण्डपप्रतिष्ठादिकं विदध्यादिति। अन्यत्सर्वं प्रागुक्तविधिना विधेयम्।

कलश-स्थापन—तदनन्तर वेदी के ईशान में कलश स्थापित करते हुये उसका पूजन आदि करके कलश को निम्न

मन्त्रों से अभिमन्त्रित करें—

कलशस्य मुखे विष्णुः कण्ठे रुद्रः समाश्रितः। मूले तस्य स्थितो ब्रह्मा मध्ये मातृगणाः स्मृताः॥
कुक्षौ तु सागराः सप्त सप्तद्वीपा वसुन्धरा। ऋग्वेदोऽथ यजुर्वेदः सामवेदो ह्यथर्वणः॥
अङ्गैश्च सहिताः सर्वे कलशं तु समाश्रिताः। अत्र गायत्री सावित्री शान्तिः पुष्टिकरी तथा॥
आयान्तु यजमानस्य दुरितक्षयकारकाः। देवदानवसंवादे मथ्यमाने महोदधौ॥
उत्पन्नोऽसि तदा कुम्भ विधृतो विष्णुना स्वयम्। त्वत्तोये सर्वतीर्थानि देवाः सर्वे त्वयि स्थिताः॥
त्वयि तिष्ठन्ति भूतानि त्वयि प्राणाः प्रतिष्ठिताः। शिवः स्वयं त्वमेवासि विष्णुस्त्वं च प्रजापतिः॥
आदित्या वसवो रुद्रा विश्वेदेवाः सपैतृकाः। त्वयि तिष्ठन्ति सर्वेऽपि यतः कामफलप्रदाः॥
त्वत्प्रसादादिमं यज्ञं कर्तुमीहे जलोद्भव। सान्निध्यं कुरु मे देव प्रसन्नो भव सर्वदा॥

तत्पश्चात् फल फूल-माला से सुशोभित चन्दोवा को सूर्यादि ग्रहों के आच्छादन के उद्देश्य से फैलाते हुये ग्रहवेदी के ऊपर बाँध दे। इस प्रकार वेदोक्त प्रक्रियानुसार मण्डप प्रतिष्ठा आदि करनी चाहिये।

अध्वभावनाशोधनादि

ततो गुरुः सशिष्यः प्रातरुत्थाय कृतावश्यकक्रियः प्रादेशमात्रं शिष्याय यथोक्तं दन्तकाष्ठं मूलमन्त्रेण सप्तवाराभिमन्त्रितं दत्त्वा दन्तधावनं कारयेत्। दन्तान् विशोध्य दन्तकाष्ठं प्रक्षाल्य पुरश्चतुरस्रे हस्तमात्रे वा स्थण्डिले त्यजेत्। ततो गुरुस्तत्परीक्षां कुर्यात्। तत्र शुभाशुभफलानि प्रागेव प्रमाणनिरूपणे प्रोक्तानि, प्रायश्चित्तं चाग्रे वक्ष्यते। ततः शिष्योऽपि स्नातः कृतपौर्वाह्णिकक्रियः समलङ्कृतः श्रीगुरुं प्रणम्य तदाज्ञया तत्पार्श्वे उपविशेत्। ततो गुरुश्च ऋत्विजश्च स्वस्वकुण्डे तथैव देवं साङ्गं सावरणं सम्पूज्य सघृतैस्तिलैस्तत्तत्कल्पोक्तपुरश्चरणहोमद्रव्यैर्वाऽष्टोत्तर-सहस्रमष्टोत्तरशतं वा जुहुयुः। ततो गुरुः शिष्यं शूद्रव्यतिरिक्तं पञ्चगव्यं पाययित्वा कुण्डसमीपं नीत्वा दिव्यदृष्ट्या विलोक्य तस्य हृदयारविन्दात् जीवात्मानं भूतशुद्ध्युक्तपरिपाट्या तद्देहाद् ब्रह्मरन्ध्रमार्गात् निःसार्य स्वात्मनि गुरुरुक्तयुक्त्या योगबलेन संयोज्य शिष्यषडध्वशोधनं कुर्यात्। तत्र शिष्यस्य पादयोः कलाध्वानं निवृत्तिप्रतिष्ठाविद्याशान्तिशान्त्यतीताश्चेति पञ्चकलात्मकं सञ्चिन्त्य, ततस्तस्य लिङ्गप्रदेशे शिवशक्तिसदाशिवेश्वरशुद्धविद्यामायाकलाविद्याकालरागनियतिपुरुष-प्रकृत्यहङ्कारबुद्धिमनःश्रोत्रत्वक्चक्षुर्जिह्वाघ्राणवाक्पाणिपादपायूपस्थशब्दस्पर्शरूपरसगन्धाकाशवाय्वग्निसलिलपृथि-व्यात्मकषट्त्रिंशत्तत्त्वरूपं शिवतत्त्वाध्वानं ध्यायेत्। इति शैवदीक्षायाम्।

वैष्णवदीक्षायां तु—जीवप्राणधियो मन इन्द्रियदशकं तन्मात्राः, भूतानां पञ्चकमपि हृत्पद्मतैजसं त्रितयं तद्वच्च वासुदेवप्रमुखाश्चत्वार उपदिष्टा इति। इन्द्रियदशकं प्रागुक्तं श्रोत्रादयो वागादयश्च। तन्मात्राश्च शब्दादयः। भूतपञ्चकमाकाशादि। तैजसं त्रितयं सोमसूर्याग्निमयं वासुदेवप्रमुखाश्च वासुदेवसङ्कर्षणप्रद्युम्नानिरुद्धाश्चत्वारः।

सौरदीक्षायां तु—भूततन्मात्रेन्द्रियाणि मनो गर्वश्च बुद्धिश्च धीस्तथा प्रधानं चेति। इन्द्रियाणि दश ज्ञानकर्मभेदात्। गर्वोऽहङ्कारः। प्रधानं प्रकृतितत्त्वम्।

शक्तिदीक्षायां तु—(निवृत्त्याद्याः पञ्च कलाः, बिन्दुः नादः शक्तिः सदाशिवः शिव इति दश तत्त्वानि। त्रिपददीक्षायां तु)—'आत्मविद्याशिवा एते विपरीतास्त एव च। सर्वतत्त्वं चे'ति। विपरीताः शिवविद्यात्मानः इति क्रमेण त एव च आत्मविद्याशिवा एवेति सप्त तत्त्वानि। इत्थं तत्तद्दीक्षायां तत्तद्ध्वानं चिन्तयेदिति। गाणपत्यदीक्षायां तु शैवतत्त्वान्येव ज्ञातव्यानि।

अध्वभावना-शोधनादि—प्रातःकाल में गुरु शिष्य के साथ उठकर आवश्यक क्रिया करके एक बित्ता के दतुवन को मूल मन्त्र के सात जप से अभिमन्त्रित करके शिष्य को देकर उसका मुख धुलवाये। शिष्य दाँत साफ करने के बाद दतुवन को धोकर हाथ भर चतुरस्र पर या स्थण्डिल पर छोड़ दे। तब गुरु शिष्य की परीक्षा करे।

तदनन्तर शिष्य स्नान करके पांचाह्निक क्रिया सम्पन्न कर समलंकृत होकर श्रीगुरु को प्रणाम करके उनकी आज्ञा से उनके बगल में बैठे। तब गुरु और ऋत्विज अपने-अपने कुण्ड में साङ्ग सावरण देवपूजन करके घी तिल से तनन् कल्पोक्त पुरश्चरण द्रव्य से एक हजार आठ या एक सौ आठ हवन करें। तब शूद्र-भिन्न शिष्य को गुरु पञ्चगव्य पिलाकर कुण्ड के समीप लाकर दिव्य दृष्टि से देखकर उसके हृदयकमल से जीवात्मा को भूतशुद्धि विधि से देह के ब्रह्मरन्ध्र मार्ग से निकालकर अपनी आत्मा में गुरूक्त युक्ति से योग बल से जोड़कर शिष्य का षडध्व शोधन करें।

उस शिष्य के पैरों में निवृत्ति, प्रतिष्ठा, विद्या, शान्ति, शान्त्यतीता—इन पाँच कलाओं का चिन्तन करें। अनन्तर उसके लिङ्गप्रदेश में शिवशक्ति, सदाशिवेश्वर, शुद्ध विद्या, माया, कला, विद्या, काल, राग, नियति, पुरुष, प्रकृति, अहङ्कार, बुद्धि, मन, श्रोत्र, त्वक्, चक्षु, जिह्वा, घ्राण, वाक्, पाणि, पाद, वायु, उपस्थ, शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्ध, आकाश, वायु, अग्नि, सलिल, पृथिव्यात्मक छत्तीस तत्त्वरूप शिव तत्त्वाध्वान का चिन्तन करें। यही शैव दीक्षा की प्रक्रिया है।

वैष्णवी दीक्षा में जीव, प्राण, बुद्धि, मन, दश इन्द्रियाँ, तन्मात्रा, पञ्चभूत, हृत्पद्म, सोम, सूर्य, अग्नि एवं वासुदेव, सङ्कर्षण, प्रद्युम्न तथा अनिरुद्ध का चिन्तन किया जाता है। सौर दीक्षा में भूततन्मात्रा, पाँच ज्ञानेन्द्रियां एवं पाँच कर्मेन्द्रियाँ, मन, अहंकार, चित्त, बुद्धि, धी एवं प्रधान अर्थात् प्रकृतितत्त्व का चिन्तन किया जाता है। शक्ति दीक्षा में निवृत्ति आदि पाँच कला, बिन्दु, नाद, शक्ति, सदाशिव एवं शिव—इन दश तत्त्वों का चिन्तन किया जाता है। त्रिपद दीक्षा में आत्मतत्त्व, विद्यातत्त्व और शिवतत्त्व होते हैं। विपरीतक्रम से भी इनका चिन्तन किया जाता है. इन्हीं दीक्षा में उनके अध्वों का चिन्तन भी होता है। गाणपत्य दीक्षा में भी शैवतत्त्व का ही चिन्तन किया जाता है।

दीक्षाङ्गहोमविधिः

ततः शिष्यस्य नाभौ अतलवितलसुतलमहातलतलातलरसातलपातालभूर्भुवः स्वर्महर्जनस्तपःसत्यलोकात्मकचतुर्दशभुवनाध्वानं सञ्चिन्त्य, (ततस्तस्य हृदये आदिक्षान्तार्णस्वरूपं वर्णाध्वानं भावयेत्। ततः शिष्यललाटे वर्णसङ्घमय पदाध्वानं विभावयेत्।) ततः शिष्यशिरसि पदसमुदायमयं मूलमन्त्रस्वरूप मन्त्राध्वानं भावयेत्, इति शिष्यशरीरेऽध्वषट्कं सञ्चिन्त्य, तं कूर्चेन स्पृशन् गुरुः, स्वकुण्डे 'ॐ अमुकस्य कलाध्वानं शोधयामि स्वाहा' इति घृताक्तैस्तिलैरष्टधा हुत्वा कलाध्वानं तत्त्वाध्वनि विलीनं विभाव्य 'ॐ अमुकस्य तत्त्वाध्वानं शोधयामि स्वाहा' इत्यष्टधा हुत्वा तत्त्वाध्वानं भुवनाध्वनि विलीनं विभाव्य पुनः 'ॐ अमुकस्य भुवनाध्वानं शोधयामि स्वाहा' इत्यष्टधा हुत्वा भुवनाध्वानं वर्णाध्वनि विलीनं विभाव्य पुनः 'ॐ अमुकस्य वर्णाध्वानं शोधयामि स्वाहा' इत्यष्टधा हुत्वा तं पदाध्वनि विलीनं विभाव्य पुनः 'ॐ अमुकस्य पदाध्वानं शोधयामि स्वाहा' इत्यष्टधा हुत्वा तं मन्त्राध्वनि विलीनं विभाव्य पुनः 'ॐ अमुकस्य मन्त्राध्वानं शोधयामि स्वाहा' इत्यष्टधा हुत्वा तं ब्रह्मरन्ध्रस्थपरशिवे लीनं विभाव्य पुनः संहृतिप्रतिलोमेन परमशिवस्य सकाशात् मन्त्राध्वानं सृष्ट्वा, ततः पदाध्वानं तस्माद्वर्णाध्वानं ततो भुवनाध्वानं तस्मात्तत्त्वाध्वानं ततः कलाध्वानं च सृष्ट्वा तत्तत्स्थाने संस्थाप्य, शिष्यं दिव्यदृष्ट्या विलोक्य, स्वस्मिन् स्थितं शिष्यचैतन्यं ततो हृदयारविन्दे आवाहनोक्तप्रकारेण तद्ब्रह्मरन्ध्रे नियोजयेत्। अत्र शूद्रसङ्करजातीनामध्वशोधनं न कार्यम्। तेषां पादोदकप्रदानेन शोधनं कुर्यात्। ततः पूर्ववत् स्वेष्टदेवताया अङ्गावरणदेवतानां घृतेनैकैकामाहुतिं दत्त्वा, ॐ भूरग्नये च पृथिव्यै च महते च स्वाहा, ॐ भुवो वायवे चान्तरिक्षाय च महते च स्वाहा, ॐ स्वरादित्याय च दिवे च महते च स्वाहा, ॐ भूर्भुवःस्वश्चन्द्रमसे च नक्षत्रेभ्यश्च दिग्भ्यश्च महते च स्वाहा इत्याहुतिचतुष्टयं हुत्वा, इतः पूर्वं प्राणबुद्धिदेहधर्माधिकारतो जाग्रत्स्वप्नसुषुप्त्यवस्थासु मनसा वाचा कर्मणा हस्ताभ्यां पद्भ्यामुदरेण शिश्ना यत् स्मृतं यदुक्तं यत्कृतं तत्सर्वं ब्रह्मार्पणं भवतु स्वाहा, इत्यष्टावाज्याहुतीर्हुत्वा,

ॐ सहस्रार्चिर्महातेजा नमस्ते बहुरूपधृक्। सर्वाशिने सर्वगत पावकाय नमोऽस्तु ते ॥१॥
त्वं रौद्र घोरकर्मा च घोरहा त्वं नमोऽस्तु ते। विष्णुस्त्वं लोकपालोऽसि शान्तिमत्र प्रयच्छ मे ॥२॥

इत्यग्निं प्रार्थ्य अग्निमन्त्रेण प्राग्वदग्निं सम्पूज्य, न्यूनातिरिक्तसिद्ध्यर्थं ददामि सघृतं तिलं ॐ हूं साङ्गं कुरु कुरु स्वाहा, इति तिलैराहुतिं हुत्वा, घृतेन स्रुवमापूर्य तदुपरि पुष्पमधोमुखं स्रुचं च निधाय शङ्खवत्सम्पुटाभ्यां कराभ्यां गृहीत्वोत्थाय, स्रुक्स्रुवयोर्मूलं नाभौ निधाय वौषडन्तेन मन्त्रेणाहुतित्रयं दत्त्वा प्राग्वत्तत्र देवं सम्पूज्य वह्नेः सकाशादुद्वास्य कलशे विसृज्य, प्राग्वद् व्याहृत्याग्निजिह्वाङ्गमूर्तिमन्त्रैरेकैकामाज्याहुतिं हुत्वा प्राग्वत् प्रोक्षणीयजलेनाग्निं परिषिच्य,

भो भो वह्ने महाशक्ते सर्वकामप्रसाधक। कर्मान्तरेऽपि सम्प्राप्ते सान्निध्यं कुरु सादरम्॥१॥

इत्यग्निं प्रार्थ्य, संहारमुद्रया तं स्वात्मन्युद्वास्य परिधीन् परिस्तरणांश्च तूष्णीमग्नौ प्रक्षिप्य, प्रणीतापात्रमुद्वास्य स्वपुरतः कुशास्तरे निधाय, ॐ प्राच्यै दिशे नमः, एवं दक्षिणायै दिशे नमः, प्रतीच्यै दिशे नमः, उदीच्यै दिशे नमः, ऊर्ध्वायै दिशे नमः, इति तत्तद्दिशि प्रणीताजलमुत्क्षिप्य, अधरायै दिशे नमः, इति भूमौ जलं निक्षिप्य, भूमौ पतितजलेन स्वात्मानं शिष्यं च कुशैः सम्प्रोक्षयेदिति प्रणीतोद्वासनं विधाय, ब्रह्माणमुद्वास्य ब्रह्मस्थाने ब्राह्मणाय सहिरण्यं पूर्णपात्रं दापयेत् इति दीक्षाङ्गहोमविधिः। पूर्णपात्रस्वरूपं तु दीक्षाप्रकरणेऽभिहितम्।

तदनन्तर शिष्य की नाभि में अतल, वितल, सुतल, महातल, तलातल, रसातल, पाताल, भूर्भुवः स्वः महः जन तप, सत्य लोकात्मक चौदह भुवनाध्वान का चिन्तन करके उसके हृदय में 'अ' से लेकर क्ष-पर्यन्त वर्णाध्वा की भावना होती है। तब शिष्य के ललाट में वर्ण संघमय पदाध्वा की भावना होती है। तब शिष्य के शिर में पदसमुदायमय मूल मन्त्रस्वरूप मन्त्राध्वा की भावना होती है। इस प्रकार शिष्य के शरीर में छः अध्वों का चिन्तन करके उन्हें कूर्च से स्पर्श गुरु अपने कुण्ड में इस प्रकार हवन करे—ॐ अमुकस्य कलाध्वानं शोधयामि स्वाहा, घृताक्त तिल से आठ आहुतियाँ निक्षिप्त करे। तदनन्तर कलाध्वा को तत्त्वाध्वा में विलीन करके 'ॐ अमुकस्य तत्त्वाध्वानं शोधयामि स्वाहा' इस प्रकार आठ हवन करके तत्त्वाध्वा को भुवनाध्वा में विलीन करके पुनः 'ॐ अमुकस्य भुवनाध्वानं शोधयामि स्वाहा' कहकर आठ आहुतियाँ डाले। इस प्रकार भुवनाध्वा को वर्णाध्वा में विलीन करके 'ॐ अमुकस्य वर्णाध्वानं शोधयामि स्वाहा' कहकर आठ आहुतियाँ डाले। तदनन्तर वर्णाध्वा को पदाध्वा में विलीन करके ॐ अमुकस्य पदाध्वानं शोधयामि स्वाहा कहकर आठ आहुतियाँ निक्षिप्त करे और उस पदाध्वा को मन्त्राध्वा में विलीन करके 'ॐ अमुकस्य मन्त्राध्वानं शोधयामि स्वाहा' कहकर आठ आहुतियाँ डाले। उस मन्त्राध्वा को ब्रह्मरन्ध्रस्थ परशिव में विलीन करके पुनः सृष्टि प्रतिलोम से परमशिव के समीप से मन्त्राध्वा को उत्पन्न करके उससे पदाध्वा को उस वर्णाध्वा, से भुवनाध्वा, भुवनाध्वा से तत्त्वाध्वा, तत्त्वाध्वा से कलाध्वा उत्पन्न करके अपने-अपने स्थान में उन्हें स्थापित करे। दिव्य दृष्टि से शिष्य का अवलोकन करे। अपने में स्थित शिष्यचैतन्य को हृदयारविन्द में आवाहनादि प्रकार से ब्रह्मरन्ध्र में नियोजित करे। शूद्र एवं सङ्कर जातियों का अध्वशोधन नहीं होता, उन्हें चरणोदक-प्रदान से ही शुद्ध करे।

इसके बाद पूर्ववत् अपने इष्ट देवता के अङ्गावरण देवताओं को घी की एक-एक आहुति देकर ॐ भूरग्नये च पृथिव्यै च महते च स्वाहा। ॐ भुवो वायवे चान्तरिक्षाय च महते च स्वाहा, ॐ स्वरादित्याय च दिवे च महते च स्वाहा, ॐ भूर्भुवःस्वश्चन्द्रमसे च नक्षत्रेभ्यश्च दिग्भ्यश्च महते च स्वाहा—इस प्रकार चार आहुतियों से हवन करके आठ आहुतियाँ मन्त्र से निक्षिप्त करे—इतः पूर्वं प्राणबुद्धिदेहधर्माधिकारतो जाग्रत्स्वप्नसुषुप्त्यवस्थासु मनसा वाचा कर्मणा हस्ताभ्यां पद्भ्यामुदरेण शिश्ना यत् स्मृतं यदुक्तं यत्कृतं तत्सर्वं ब्रह्मार्पणं भवतु स्वाहा। तदनन्तर निम्न मन्त्र से अग्नि की प्रार्थना करे—

ॐ सहस्रार्चिर्महातेजा नमस्ते बहुरूपधृक्। सर्वाशिने सर्वगत पावकाय नमोऽस्तु ते।।

त्वं रौद्र घोरकर्मा च घोरहा त्वं नमोऽस्तु ते। विष्णुस्त्वं लोकपालोऽसि शान्तिमत्र प्रयच्छ मे।।

अग्नि की प्रार्थना करके पूर्ववत् अग्नि मन्त्र से अग्नि की पूजा करे। तत्पश्चात् 'न्यूनातिरिक्तसिद्ध्यर्थं ददामि सघृतं तिलं ॐ हूं साङ्गं कुरु कुरु स्वाहा' मन्त्र से तिल की आहुति से हवन करे। स्रुव को घी से भरकर उसके ऊपर पुष्प एवं अधोमुख स्रुच को रखकर शङ्खवत् सम्पुटित हाथों से पकड़कर उठायें। स्रुच एवं स्रुव के मूल को नाभि पर रखकर वौषडन्त मन्त्र से तीन आहुतियाँ डाले। पूर्ववत् देव का पूजन करके अग्नि के समीप से उसका उद्वासन कर कलश में विसर्जन करके पूर्ववत्

व्याहृति अग्नि जिह्वा अङ्ग मूर्तिमन्त्रों से एक एक आज्याहुति से हवन करे। तदनन्तर पूर्ववत् प्रोक्षणी के जल से अग्नि का परिषेचन करे और निम्न मन्त्र से अग्नि की प्रार्थना करे—

भो भो वह्ने महाशक्ते सर्वकामप्रसाधक। कर्मान्तरेऽपि सम्प्राप्ते सान्निध्यं कुरु सादरम्॥

इस प्रकार अग्नि की प्रार्थना करके सम्पन्न हुए अपनी अञ्जली में स्थापित कर परिधियों एवं परिस्तरणों को ब्रह्मपात्र से अग्नि में प्रक्षिप्त कर दे। प्रणीता पात्र का उद्वासन करके उसे अपने आगे कुशास्तरण पर रखकर ॐ प्राच्यै दिशे नमः। इसी प्रकार रखकर दक्षिणायै दिशे नमः प्रतीच्यै दिशे नमः उदीच्यै दिशे नमः ऊर्ध्वायै दिशे नमः कहकर इन दिशाओं में प्रणीता के जल को उछाले। अधरायै दिशे नमः से भूमि पर जल छोड़े। भूमि पर गिरे जल से अपना और शिष्य का कुश से सम्प्रोक्षण करे। इस प्रकार प्रणीता का उद्वासन करने के बाद ब्रह्मा का उद्वासन करके ब्रह्मस्थान में स्थित ब्राह्मण को सोना-सहित पूर्णपात्र प्रदान करे। यही दीक्षाङ्ग होमविधि होती है। पूर्णपात्र का स्वरूप दीक्षा प्रकरण में विवेचित किया गया है।

ततो नेत्रमन्त्रेण शिष्यनेत्रे नूतनवस्त्रपट्टेन बद्ध्वा तं हस्तेन गृहीत्वा कुम्भसमीपे गत्वा तेन सह, तस्याञ्जलिं पुष्पैरापूर्य स्वयं मूलमन्त्रमुच्चरन्, घटस्थदेवतायै पुष्पाञ्जलिं दापयित्वा तस्य नेत्रबन्धनं विमुच्य कुशास्तरे तमुपवेश्य,

अज्ञानतिमिरान्धस्य ज्ञानाञ्जनशलाकया। चक्षुरुन्मीलितं येन तस्मै श्रीगुरवे नमः॥१।

इति मन्त्रं पाठयित्वा कुम्भे देवं साङ्गावरणं सर्वोपचारैः सम्पूज्य, प्रागुक्तभूतशुद्धिविधिना शिष्यस्य देहं संस्मृत्य संशोध्योत्पाद्य, तस्य देहे मूलमन्त्रस्य ऋष्याद्यखिलन्यासजालं विधाय, पुनः कुम्भस्थदेवतां गन्धादिपञ्चोपचारैः सम्पूज्य, मण्डपद्वारदेवताः सलोकपालाङ्गावरणदेवता गणेशादिचतुरायतनदेवताः स्वस्वाङ्गावरणसहिता देवस्याङ्गे विलीना इति विभाव्य, तं प्रागुक्तविधिना षडङ्गन्यासयोगेन सकलीकृत्य तेजोरूपमापाद्य, तत्तेजोरूपं कलशजलं परब्रह्ममयं सञ्चिन्तयन्, शिष्यं समलंकृतं वेद्याः समीपे पूर्वैशानोत्तरान्यतमदिशि सर्वतोभद्रादिमण्डले पूर्वाभिमुखं भद्रपीठे समुपवेश्य, पञ्चवाद्यघोषपुरःसरं गुरुः कुम्भं समुद्धृत्य, कुम्भस्थाम्रपल्लवादिकं कल्पवृक्षशाखाबुद्ध्या शिष्यशिरसि निधाय, वेदघोषं कुर्वद्भिर्ऋत्विग्भिरन्यैश्च ब्राह्मणैः सह मूलमन्त्रेण विलोममातृकया तं पूर्वाभिमुखोपविष्टमुत्तराभिमुखस्तिष्ठन् अभिषिच्य, पुनः पूर्वमभ्यर्चितयन्त्ररूपं गृहीत्वा, तत्तोयैरभिषिच्य, तत्करकावशिष्टजलेन शिष्यमाचामयित्वा, देवतास्वरूपं तं प्राग्वत् षडङ्गन्यासेन सकलीकृत्य, शुद्धे नूतने वाससी परिधाप्य स्वाचान्तं स्वसमीपे समुपवेश्य, शिष्यदेहे संक्रान्तं देवं तस्यैव देहे गन्धादिपञ्चोपचारैः सम्पूज्य शिष्यदेवतयोरैक्यं विभावयन्, सुविनीतस्य शिष्यस्य दक्षिणकर्णे श्रीमूलमन्त्रं गणेशादिचतुरायतनमन्त्रपूर्वकं, गणेशदीक्षायां सूर्यादिपूर्वकं तत्तदङ्गतया पूजनक्रमेण वारत्रयं च वदेत्। शिष्यो ब्राह्मणश्चेत्तस्य हस्ते मन्त्रदानरूपेणोदकं दद्यात्, अन्येभ्यस्त्वेवमेव वदेत्। ततः शिष्यः स्वगुरूपदिष्टमन्त्रमृष्यादिकं-रषडङ्गन्यासपूर्वकमष्टोत्तरशतमष्टाविंशतिवारमष्टधा वा जपित्वा, जपं समर्प्य गुरुमन्त्रदेवतानामैक्यं विभाव्य, साष्टाङ्गं बहुशो गुरुं प्रणम्य पुनः पञ्चाङ्गं प्रणमेत्। तत्राष्टाङ्गपञ्चाङ्गयोर्लक्षणमुक्तं प्रागेव प्रमाणे। इत्थं प्रणम्य गुरवे ऋत्विग्भ्यश्च प्रमाणोक्तां दक्षिणां दद्यात्, इति क्रियामयी दीक्षा।

तब नेत्रमन्त्र से शिष्य की आँखों पर नये वस्त्र की पट्टी बांधकर उसे हाथ से पकड़कर कलश के समीप उसके साथ जाकर उसकी अञ्जली को पुष्प से भरकर स्वयं मूल मन्त्र का उच्चारण करते हुये घटस्थ देवता को पुष्पाञ्जलि दिलवाने के बाद उसके आँखों की पट्टी खोलकर कुशास्तर पर बैठाकर उससे निम्न मन्त्र पढ़वाये—

अज्ञानतिमिरान्धस्य ज्ञानाञ्जनशलाकया। चक्षुरुन्मीलितं येन तस्मै श्रीगुरवे नमः।

मन्त्र पढ़वाकर कलश के देव का साङ्गावरण सभी उपचारों से पूजन करे। तत्पश्चात् पूर्वोक्त भूतशुद्धि विधि से शिष्य के देह का स्मरण, संशोधन एवं उत्पादन करके उसके देह में मूलमन्त्र के ऋष्यादि सभी न्यासों को करके पुनः कलशस्थ देवता का गन्धादि पञ्चोपचार से पूजन करे। तब मण्डप द्वारा देवता, लोकपाल, अङ्गदेवता, आवरणदेवता, गणेश आदि चतुरायतन देवता अपने-अपने अङ्गावरण सहित देवता के अङ्ग में विलीन हो गये, इस प्रकार चिन्तन करते हुये पूर्वोक्त विधि से षडङ्ग

न्यासादि द्वारा सकलीकरण करके उसे तत्त्वरूप बनाकर इस तत्त्वरूप कलशजल को परब्रह्ममय समझते हुये समलंकृत शिष्य को वेदी के समीप पूर्व ईशान उत्तर में से किसी दिशा में सर्वतोभद्रादि मण्डलस्थ में भद्रपीठ पर पूर्वाभिमुख बैठाकर। पाँच प्रकार के बाजा बजवाते हुए गुरु कलश को उठाकर कुम्भस्थ आम्रपल्लवादि को कल्पवृक्ष शाखा मानकर शिष्य के शिर पर रखे। ऋत्विजों और अन्य ब्राह्मणों के वेदघोष के साथ मूल मन्त्र से विलोम मातृका से शिष्य को पूर्वमुख बैठाकर स्वयं गुरु उत्तरमुख बैठकर उसका अभिषिञ्चन करे। पुनः पूर्व अष्टोत्तर भस्मरूप ग्रहण करके उसी जल से अभिषेचन करने के बाद बचे हुए जल से शिष्य को आचमन कराये। देवतास्वरूप शिष्य का पूर्ववत् षडङ्ग न्यास से सकलीकरण करे। शुद्ध नया वस्त्र पहनाये। अपने समीप बैठाये। शिष्यदेह में संक्रान्त देव की उसी के देह में गन्धादि पञ्चोपचार से पूजन करके शिष्य और देवता में ऐक्य की भावना करे। मुखिनीत शिष्य के दक्षिण कान में श्री मूल मन्त्र को गणेशादि चतुरायतन मन्त्रपूर्वक गणेश-दीक्षा में मूर्धादिपूर्वक तत्तत् अङ्गन्यास पूजन करके तीन बार कहे। ब्राह्मण शिष्य के हाथ में मन्त्रदानरूप जल देवे, ब्राह्मणेतर को इसी प्रकार कहे। तब शिष्य स्वगुरूपदिष्ट मन्त्र के ऋष्यादि कर षडङ्ग न्यास करके एक सौ आठ बार अथवा अट्ठाईस बार या आठ बार मन्त्र का जप करे। जप समर्पण करे। गुरु मन्त्र एवं देवता में ऐक्य की भावना करे। गुरु को साष्टाङ्ग प्रणाम श्रद्धापूर्वक बार करके पञ्चाङ्ग प्रणाम करे। इस प्रकार गुरु और ऋत्विजों को प्रणाम करके प्रमाणोक्त दक्षिणा प्रदान करने से क्रियामयी दीक्षा की विधि पूर्ण होती है।

क्रियादीक्षाकरणाशक्तौ संक्षेपविधि

अथैवं विस्तरतः क्रियादीक्षां कर्तुमशक्तश्चेत् पूर्वोक्ते कनिष्ठमण्डपं प्राग्वद्वेदिकायां मण्डलं कृत्वा तथैव तत्र कुम्भस्थापनं कृत्वा, ऋत्विग्वरणाशक्तौ गुरुश्चतुरस्रमेव कुण्डं कृत्वा, तत्राग्निस्थापनाद्यखिलं कृत्वोक्तविधिनाभिषिच्य दीक्षां दद्यात्। मण्डपकरणाशक्तौ क्वचित् प्रशस्ते स्थले प्राग्वत् मण्डलं तत्तद्देवतापूजायन्त्रं च वा कृत्वा, तदशक्तौ प्रागुक्तविधिना स्थण्डिलं कृत्वा तत्रोक्तविधिनाग्निं संस्थाप्योक्तविधिना होमादिकं कृत्वाभिषिच्य मन्त्रं दद्यात्।

इस प्रकार की विस्तृत क्रिया-दीक्षा करने में असमर्थ होने पर पूर्वोक्त कनिष्ठ मण्डप वेदी मण्डल बनाकर उसी प्रकार कलश-स्थापन करे। ऋत्विजों के वरण में अशक्त होने पर गुरु चतुरस्र कुण्ड ही बनाये। उसमें अग्निस्थापन आदि सभी कृत्य करे। उक्त विधि से अभिषेचन करके दीक्षा प्रदान करे। मण्डल बनाने में अशक्त होने पर किसी प्रशस्त स्थल में पूर्ववत् मण्डल बनाकर उस देवता का पूजायन्त्र बनाकर दीक्षा दे। इसे करने में भी अशक्त होने पर पूर्वोक्त विधि से स्थण्डिल बनाकर उक्त विधि से अग्निस्थापन करे एवं उक्त विधि से हवनादि करके अभिषेक करके मन्त्र प्रदान करे।

अग्नेर्वर्णादिफलम्

अथ येऽग्नेर्वर्णादयस्तानाह, तत्र नारदपञ्चरात्रे—

अग्नेर्भासश्च गन्धाश्च शब्दाश्चाकृतयस्तथा। विकाशाश्च शिखाश्चैव संवेद्याः कर्मसिद्धये॥१॥
पद्मरागद्युतिः श्रेष्ठो लाक्षारससमप्रभः। बालार्कवर्णो हुतभुग्जपाभः शस्यते बुधैः॥२॥
इन्द्रगोपकसङ्काशः शोणिताभोऽथ पावकः। शक्रचापनिभः श्रेष्ठः कुसुम्भाभस्तथैव च॥३॥
रक्तानां पुष्पजातीनां वर्णैनाग्निरिहोच्यते। इति।

अथ गन्धः—

सुगन्धद्रव्यगन्धोऽग्निर्घृतगन्धः सुशोभनः। आयुर्दः पद्मगन्धः स्याद्बिल्वगन्धश्च सुव्रतः॥१॥
नागचम्पकपुन्नागपाटलीयूथिकानिभः। पद्मेन्दीवरकह्लारसर्पिर्गुग्गुलसन्निभः॥२॥
पावकस्य शुभो गन्धः......................। इति।

अथ शब्दः—

जीमूतवल्लकीशिखिमृदङ्गध्वनितुल्यकः। शब्दोऽग्नेः सिद्धये होतुरन्यथा स्यादसिद्धिदः॥१॥ इति।

शारदातिलके 'भेरीवारिदहस्तीन्द्रध्वनिर्वह्नेः शुभावहः' इति।

अथाकृतिः—

वृत्ताकारो द्विजश्रेष्ठ ध्वजचामरसन्निभः। विमानानां हयानां च प्रासादानां वृषस्य च ॥१॥
आकारेणाथ हंसानां मयूराणां च सिद्धिदः। तदाकृतिः सदा वह्निः सद्यः सिद्धिकरः स्मृतः ॥२॥
शेषाणां दंष्ट्रिणां रूपं न शस्तं होमकर्मणि। यद्रूपं कथितं चैतद्यदि तस्य प्रतीक्षणम् ॥३॥
अन्योन्यत्वं प्रपद्येत तदा सिद्धिकरोऽनलः। इति।

अथ शिखाः—

विषमाश्च शिखा वह्नेस्त्यादयश्च शुभावहाः। ह्रस्वा ह्रस्वोन्नता दीर्घाग्निज्वालाः सिद्धिदाः स्मृताः ॥१॥ इति।

तथा शारदातिलके—

प्रदक्षिणास्त्वसक्तकम्पाश्छत्राभा शिखिनः शिखाः। शुभदा यजमानस्य राज्यस्यापि विशेषतः ॥१॥ इति।

अथ नारदपञ्चरात्रे—

प्रदीप्ते लेलिहानेऽग्नौ निर्धूमे सगुणे तथा। हृद्ये तुष्टिप्रदे चैव होतव्यं सिद्धिमिच्छता ॥१॥
स्निग्धः प्रदक्षिणावर्तः सुशब्दश्चापि यो भवेत्। नित्यमेव शुभकरो यदन्यैर्वर्जितोऽगुणैः ॥२॥ इति।

अथ निषिद्धः—

अल्पतेजाश्च रूक्षश्च विस्फुलिङ्गसमन्वितः। धूमावलीढज्वालश्च कृशानुर्नैव सिद्धिदः ॥१॥
दुर्गन्धश्चावलीढश्च सितकृष्णश्च यो भवेत्। भूमिं च विलिखेद्यस्तु सोऽपि दद्यात्पराभवम् ॥२॥ इति।

तथा शारदातिलके—

कृष्णः कृष्णगतेर्वर्णो यजमानं विनाशयेत्। श्वेतो राष्ट्रं निहन्त्याशु वायसस्वरसन्निभः ॥१॥
खरस्वरसमो वह्नेर्ध्वनिः सर्वविनाशकृत्। पूतिगन्धो हुतवहो होतुर्दुःखप्रदो भवेत् ॥२॥
छिन्नावृत्ता शिखा कुर्यान्मृत्युं धनपरिक्षयम्। शुकपक्षनिभो धूमः पारावतसमप्रभः ॥३॥
हानिं तुरङ्गजातीनां गवां च कुरुतेऽचिरात्। इति।

तथा तन्त्रसारे—

खरोष्ट्रमहिषादीनां रुतमत्र न सिद्धये। रूक्षश्चटचटाशब्दस्त्वपसव्यगतिस्तथा ॥१॥
उल्लिखेद्वसुधां यश्च यश्चाधःशिख एव च। नेष्यतेऽसौ मुनिश्रेष्ठ शास्त्रेऽस्मिन् पारमेश्वरे ॥२॥ इति।

अत्रैवंविधेषु दोषेषु प्रायश्चित्तमुक्तं कुलप्रकाशतन्त्रे—

एवंविधेषु दोषेषु प्रायश्चित्ताय देशिकः। मूलेनाज्येन जुहुयात् पञ्चविंशतिमाहुतीः ॥१॥
पञ्चविंशतिरेकैकस्मिन् दोषे।

अग्निवर्णादि के फल नारदपञ्चरात्र में कहा गया है कि अग्नि के प्रकाश, गन्ध, शब्द, आकृति, विकास एवं शिखा से कर्मसिद्धि का विचार करे। पद्मराग द्युति श्रेष्ठ होती है। लाक्षारस के समान प्रभा, नवोदित सूर्य की प्रभा, अड़हुल फूल के समान प्रभा प्रशस्त होती है। इन्द्रगोप वर्ण की आभा, लहू के रङ्ग के समान प्रकाश और इन्द्रधनुष के समान प्रकाश वाला पावक श्रेष्ठा होता है। इसी प्रकार कुसुम्भपुष्प के समान आभा और लाल फूलों के समान वर्ण वाला पावक श्रेष्ठ होता है।

गन्ध—सुगन्धित द्रव्यों का गन्ध, घृताग्नि का गन्ध, कमल का गन्ध एवं बेल का गन्ध आयु प्रदान करने वाला होता है। नागचम्पा, पुन्नाग, पाटलि, जूही, कमल, नीलकमल, कल्हार, गोघृत एवं गुग्गुलयुक्त अग्नि का गन्ध शुभ माना जाता है।

शब्द—जीमूत वन्नकी मोर मृदङ्ग के शब्द के समान अग्नि के शब्द सिद्धिदायक होते हैं अन्य शब्द सिद्धिदायक नहीं होते। शारदातिलक में कहा गया है कि ढोल वादन हाथी इन्द्रध्वनि के समान अग्नि के शब्द शुभावह होते हैं।

आकृति—वृत्ताकार ध्वज एवं चामर के समान विमान, घोड़े, प्रासाद वृष हंस एवं मोर के आकार की अग्नि सदा सिद्धिदायक होती हैं शेष एवं दीन वाले रूप की अग्नि होमकर्म में प्रशस्त नहीं होती। इन कथित रूपों की अग्नि की प्रतिक्षण अन्योन्यत्व प्रतिपादित होने से सिद्धिकारक होती है।

शिखा—अग्नि की विषम शिखा शुभावह होती है लम्ब लम्बोन्नत एवं दीर्घ अग्निज्वाला सिद्धिदायक होती है। शारदातिलक में कहा गया है कि प्रदक्षिणा करती हुई, कम्पनरहित, छत्राकार एवं मोरपंख के समान अग्नि-शिखा यजमान के लिये शुभद होती है विशेषत राजाओं के लिये यह अत्यन्त शुभदायक होती है। नारदपञ्चरात्र में कहा गया है कि प्रदीप्त, लपलपाती शिखा वाली निर्धूम, सगुण रुचिकारक एवं तुष्टिप्रद अग्नि में सिद्धि की इच्छा से हवन करना चाहिये। स्निग्ध प्रदक्षिणावर्त सुशब्द अग्नि नित्य शुभद होती है।

निषिद्ध अग्नि—कम तेज वाली रूखी चिनगारी वाली एवं धूमावली-युक्त ज्वाला से सिद्धि नहीं मिलती। दुर्गन्धयुक्त, उजले काले रङ्ग वाला पावक पराभव देता है। शारदातिलक में कहा गया है कि काले रङ्ग की ज्वाला में हवन करने से यजमान का विनाश होता है। उजले वर्ण की अग्नि में हवन करने से राष्ट्र का नाश होता है। कौआ के समान स्वर और गदहे की बोली के समान शब्दयुक्त अग्नि में हवन से सब कुछ नष्ट हो जाता है। बदबूदार अग्नि में हवन होता के लिये दुःखप्रद होता। छिन्न एवं आवृता शिखा मृत्युकारक और धनक्षयकारक होती है। सुग्गे के पंख के समान धूम्रयुक्त एवं कबूतर के समान प्रभायुक्त अग्नि में हवन से घोड़ो, गायों का अल्पकाल में ही विनाश होता है।

तन्त्रसार में कहा गया है कि गदहा, ऊँट, भैंसे की बोली के समान शब्दयुक्त अग्नि में हवन से सिद्धि नहीं मिलती। रूखा, चटचट शब्दयुक्त, अपसव्य गति वाली, भूमि को छूने वाली, नीची शिखा वाली अग्नि को अनिष्टप्रद कहा गया है।

इन दोषों से युक्त अग्नि में हवन के लिये प्रायश्चित्त कुलप्रकाशतन्त्र में कहा गया है कि इस प्रकार के दोषों के निवारण के लिये देशिक को मूल मन्त्र से पच्चीस आहुति गोघृत की डालनी चाहिये। यहाँ पर प्रत्येक दोष के लिये अलग-अलग पच्चीस आहुतियाँ देय हैं।

सात्त्विकादिजिह्वाभेदः

अथ वह्नेः सात्त्विकादिजिह्वाभेदाः—तत्र दीक्षाङ्गहोमे सात्त्विकशान्तिकहोमे हिरण्याद्याः प्रागेवोक्ताः। अथ वश्यादिकाम्यहोमेषु राजस्यो जिह्वाः कुलमूलावतारे—

राजस्यः पद्मरागैका सुवर्णा भद्रलोहिता। चतुर्थी लोहिता श्वेता धूमिन्यन्या करालिका॥१॥ इति।

तामस्योऽपि तत्रैव—

……………………तामस्यो विश्वमूर्तिका। स्फुलिङ्गिनी धूम्रवर्णा चतुर्थी तु मनोजवा॥१॥
पञ्चमी लोहिताख्या स्यात्कराली गदिता तथा। काली च सप्तमी प्रोक्ता ज्ञातव्याः कार्यभेदतः॥२॥
यागक्रियाकाम्यहोमक्रूरहोमेषु च क्रमात्। इति।

अग्नि के सात्त्विक आदि जिह्वाभेद—दीक्षाङ्ग हवन में सात्त्विक, शान्तिक हवन में हिरण्यादि जिह्वा का वर्णन पहले ही किया जा चुका है। वश्यादि काम्य होम में राजसिक जिह्वा के बारे 'कुलमूलावतार' में कहा गया है कि राजसिक अग्निज्वाला पद्मराग के समान वर्ण वाली, सुवर्णा, भद्रलोहिता, लोहिता, श्वेता, धूमिनी एवं करालिका होती है। वहीं पर तामसिक अग्निज्वाला को बताते हुये कहा गया है कि विश्वमूर्तिका, स्फुलिङ्गिनी, धूम्रवर्णा, मनोजवा, लोहिताख्या, कराली एवं काली—ये सात कार्यभेद से तामसी अग्निज्वाला कही गई है। ये सभी यागक्रिया, काम्य होम एवं क्रूर होम में क्रम से होती हैं।

सात्त्विकादिजिह्वाभेद:

अथ जिह्वानामधिदेवता: कुलप्रकाशतन्त्रे—

जिह्वानामधिदेवा: स्युर्विबुधा: पितरस्तथा। गन्धर्वयक्षनागाश्च पिशाचा राक्षसास्तथा ॥१॥
रसनासु सुरादीना जुहुयात् कार्यसिद्धये। तृप्ता दद्युस्ततो देवा वाञ्छिता सिद्धिमुत्तमाम् ॥२॥
रसना: स्वीयनामाभा: कृशानो: प्रायशो मता:। इति।

उत्तरतन्त्रे—

वैश्वानरं स्थितं ध्यायेत् समिद्धोमेषु देशिक:। शयानमाज्यहोमेषु निषण्णं शेषकर्मसु ॥१॥ इति।

अथात्र होमकाले वह्नेर्जिह्वाशिर:कर्णादिकं ज्ञात्वा जिह्वायामेव जुहुयात्। तथा चोक्तं महाकपिलपञ्चरात्रे राहुकल्पे च—

सर्वकार्यप्रसिद्ध्यर्थं जिह्वायां तस्य होमयेत्। चक्षु:कर्णादिकं ज्ञात्वा होमयेद् देशिकोत्तम: ॥१॥
अग्निकर्णे हुतं यत्तत्कुर्याच्च व्याधितो भयम्। नासिकाया महद्दु:खं चक्षुषोर्नाशनं भवेत् ॥२॥
केशे दारिद्र्यदं प्रोक्तं तस्माज्जिह्वासु होमयेत्। यत्र काष्ठं तत्र कर्णौ यत्र धूमस्तु नासिका ॥३॥
यत्राल्पज्वलनं नेत्रं यत्र भस्म तु तच्छिर:। यत्र प्रज्वलितो वह्निस्तत्र जिह्वा: प्रकीर्तिता: ॥४॥ इति।

तथा शारदातिलके—

आस्यान्तर्जुहुयाद्वह्ने: विपश्चित् सर्वकर्मसु। कर्णहोमे भवेद्व्याधिर्नेत्रे त्वन्धत्वमीरितम् ॥१॥
नासिकाया मन:पीडा मस्तके धनसंक्षय:। सधूमोऽग्नि: शिर: प्रोक्तं निर्धूमश्चक्षुरेव च ॥२॥
ज्वलन् कृशो भवेत्कर्ण: काष्ठमग्नेश्च नासिका। अग्निर्विजायते यत्र शुद्धस्फटिकसन्निभ: ॥३॥
तन्मूलं तत्र विज्ञेयं चतुरङ्गुलमानत:। इति।

जिह्वाओं के अधिदेवता— कुलप्रकाशतन्त्र में कहा गया है कि देवता, पितर, गन्धर्व, यक्ष, नाग, पिशाच एवं राक्षस जिह्वाओं के अधिदेवता कहे गये हैं। कार्यसिद्धि के लिये देवताओं का हवन जिह्वाओं में करना चाहिये। इससे देवता तृप्त होकर वाञ्छित उत्तम सिद्धि देते हैं। अपने-अपने नाम के अनुसार ही इन अग्नियों की ज्वाला होती है। उत्तरतन्त्र में कहा गया है कि समिधा हवन में देशिक अग्नि के बैठे रूप का ध्यान करे। आज्य हवन में सोये हुए रूप का ध्यान करे एवं शेष कार्यों में बैठे हुए का ध्यान करे। हवन के समय अग्नि के जीभ, शिर, कान आदि को जानकर जिह्वा में ही हवन करना चाहिये। इसीलिये महाकपिलपञ्चरात्र के राहुकल्प में कहा है कि सभी कार्यों की सिद्धि के लिये अग्नि की जिह्वा में हवन करना चाहिये। आँख, कान को जानकर ही देशिकोत्तम हवन करे। अग्निकर्ण में हवन करने से व्याधि होती है। नाक में हवन से महाद् दु:ख और आँख में हवन से नाश होता है। केश में हवन करने से दरिद्रता होती है। इसलिये जिह्वा में ही हवन करना चाहिये। जहाँ लकड़ी हो वहाँ कान एवं जहाँ धूआँ होता है, वहाँ नाक होता है। जहाँ ज्वलन होता है वहाँ नेत्र और जहाँ भस्म होता है वहाँ पर शिर होता है। प्रज्वलित ज्वाला ही अग्नि की जीभ होती है। शारदातिलक में कहा गया है कि विद्वान् सभी कर्मों में हवन अग्निमुख में ही करे। कान में हवन करने से व्याधि होती है। नेत्र में हवन से होता अन्धा होता है। नासिका में हवन से मनस्ताप होता है एवं मस्तक में हवन से धननाश होता है। धूआँ अग्नि का मस्तक है। धूआँ-रहित अग्नि नेत्र है। कम ज्वाला अग्नि का कान है एवं लकड़ी अग्नि की नासिका है। अग्नि जहाँ शुद्ध स्फटिक के समान होती है, उसके चार अंगुल मान तक अग्नि का मूल कहा गया है।

स्रुक्स्रुवरचनाप्रकार:

अथ स्रुक्स्रुवौ उत्तरतन्त्रे—

स्रुक्स्रुवौ शिंशपाश्वत्थश्रीपर्णीखदिरात्मजौ। चन्दनद्वयदेवद्रुविकङ्कतशमीभवौ ॥१॥

बिल्वोदुम्बरपलाशनागकेसरसम्भवौ । बकुलाशोकपुन्नागप्लक्षन्यग्रोधचम्पकैः ॥२॥
निर्मितौ ······· ··· ··· ·· । इति।

शारदातिलके—

श्रीपर्णीशिंशपाक्षीरशाखिष्वेकतमं बुध: । गृहीत्वा विभजेद्धस्तमात्रं षट्त्रिंशता पुन: ॥१॥
विंशत्यंशैर्भवेद् दण्डो वेदिरन्तैरष्टभिर्भवेत् । एकांशेन मित: कण्ठ: सप्तभागमितं मुखम् ॥२॥
वेदित्र्यंशेन विस्तार: कण्ठस्य परिकीर्तित: । अग्रं कण्ठसमानं स्यान्मुखे मार्गं प्रकल्पयेत् ॥३॥
कनिष्ठाङ्गुलिमानेन सर्पिषो निर्गमाय वै । वेदीमध्ये विधातव्या भागेनैकेन कर्णिका ॥४॥
विदधीत बहिस्तस्या एकांशे नाभिपङ्कजम् । तस्य खातं त्रिभिर्भागैर्वृत्तमर्धांशतो बहि: ॥५॥
अंशेनैकेन परितो दलान्यष्टौ प्रकल्पयेत् । मेखला मुखवेद्यो: स्यात्परितोऽर्धांशमानत: ॥६॥
दण्डमूलाग्रयो: कुम्भौ गुणवेदाङ्गुलै: क्रमात् । गण्डीयुगं यथांशै: स्याद्दण्डस्यानाह ईरित: ॥७॥
षड्भिरंशै: पृष्ठभागो वेद्या: कूर्माकृतिर्भवेत् । हंसस्य वा हस्तिनो वा पोत्रिणो वा मुखं लिखेत् ॥८॥
मुखस्य पृष्ठभागोऽस्या: सम्प्रोक्तं लक्षणं स्रुच: । स्रुवश्चतुर्विंशतिभिर्भागैरारचयेत् स्रुवम् ॥९॥
द्वाविंशत्या दण्डमानमंशैरेतस्य कीर्तितम् । चतुर्भिरंशैरानाह: कर्षाज्यग्राहि तच्छिर: ॥१०॥
अंशद्वयेन निखनेत् पङ्के मृगपदाकृतिम् । दण्डमूलाग्रयोर्गण्डी भवेत् कङ्कणभूषिता ॥११॥ इति।

गण्डीयुगं कङ्कणाकारं, 'कङ्कणभूषिते'ति स्वयमुक्तत्वात्। 'गण्डी कङ्कणवद् भवे'दिति वायवीयसंहितावचनाच्च। अन्यत्र तु गण्डी कुम्भ:। तत्र तस्यैवावश्यकत्वात्। वायवीयसंहितायां—'स्रुक्स्रुवौ तैजसौ वापि' इति। स्रुक्स्रुवाभावे कुम्भसम्भव:—

पलाशपत्रे निश्छिद्रे रुचिरौ स्रुक्स्रुवौ मुने । विदध्याद्ब्राह्मणपत्रे संक्षिप्ते होमकर्मणि ॥१॥ इति।

अथैतद्रचनाप्रकारमाह—तत्र शिंशपाक्षीरश्रीपर्णीखदिराग्रचन्दनरक्तचन्दनदेवदारुविकङ्कतशमीपलाशोदुम्बरबिल्वपनसबकुलाशोकनागकेसरपुन्नागचम्पकवटवृक्षाणामन्यतममशुष्कमव्रणमजीर्णं घुणादिभिरदुष्टमुद्दिष्टमानादधिकस्थूलदीर्घं समचतुरस्रं काष्ठं गृहीत्वा, तत्र मुष्ट्यङ्गुलेन चतुर्विंशत्यङ्गुलमानं षट्त्रिंशदंशेन विभज्य, तेषु विंशत्यंशं दण्डार्थं विभज्यावशिष्टषोडशभागेष्वग्रदेशे भागाष्टकं मुखार्थं परिकल्प्यावशिष्टभागाष्टकेन समचतुरस्रां वेदीं कृत्वा तन्मध्यचिह्नं कृत्वा तच्चिह्नमवलम्ब्यार्धांशमानेनाभितो वृत्तं निष्पाद्य, तद्बहिरप्येकांशमानेन वृत्तान्तरं निष्पाद्य, वृत्तयोरन्तराले भागत्रयं निम्नं मध्ये वृत्ताकारां कर्णिकां स्थापयित्वा तद्बहिर्गर्तं कृत्वा तद्बहिरर्धांशमानेनाभितो वृत्तं निष्पाद्य, तद्बहिरपि एकांशमानेन वृत्तान्तरं निष्पाद्य, वृत्तयोरन्तरालेऽष्टदलानि परिकल्प्य तद्बहिरर्धांशमाने सुसमाकारां चित्रितां वा शोभां विदध्यात्। ततोऽग्रेऽवशिष्टांशेन वेद्यास्तृतीयांशेन पार्श्वद्वयखण्डनेन मध्ये एकांशेन कण्ठं विधाय कण्ठत: किञ्चिदुच्चमवशिष्टं सप्तभिरंशैरग्रं कण्ठसमानविस्तारं समतलमधस्तादधोऽध: क्षीयमाणविस्तारं कृत्वा, मुखेऽपि वेदीवत् मेखलां परिकल्प्य कण्ठादग्रो मुखस्य मेखलामभिन्दन् प्रणालिकाकारमेकांशमाननिम्नं कनिष्ठाप्रवेशयोग्यं खातं कृत्वा कर्णिकामध्यस्थखातमध्यात् मुखमध्यस्थप्रणालिकाकारखातमध्ये यथा घृतं नि:सरति तथा तप्तलोहशलाकया कण्ठवेदिपरिधिभेदनं सुषिरं विधाय, तथैवाग्रेऽपि मुखपरिधिभेदनं घृतनिर्गमाय कनिष्ठाप्रवेशयोग्यं रन्ध्रं कुर्यात्। ततो वेद्या: पृष्ठभागे कूर्माकारं मध्ये किञ्चित्समतलं भूमौ यथा निश्चलं तिष्ठति तथा कृत्वा मुखस्य पृष्ठभागे मध्ये किञ्चिन्निम्नं कृत्वा, मुखरन्ध्राधस्तात् ऊर्ध्वभागं हंसमुखाकारं गजमुखाकारं वराहमुखाकारं वा सुरम्यं कारयित्वा, दण्डस्याग्रे वेधत एकांशेन कङ्कणाकारत्रयं चतुष्टयं वा कृत्वा तदधोंऽशचतुष्टयेन मुखकण्ठमध्यमूलादिसुशोभितमूर्ध्वमुखं निर्माय, तदध: पुनरेकांशेन प्राग्वत् कङ्कणानि कृत्वा तदधो नवांशमानं सुवर्तुलं षडंशमानदैर्घ्यं मुष्टिना वेष्टनयोग्यस्थूलं दण्डमध्यं कृत्वा तदध: पुनरेकांशेन कङ्कणानि तदधोंऽशत्रयेण प्राग्वदूर्ध्वमुखं कुम्भं तदध: पुनरेकांशेन कङ्कणानि च

कुर्यात्, इति स्रुच निर्माय, स्रुव. षट्त्रिंशभागेषु चतुर्विंशतिभागदैर्घ्यमग्रदेशेऽशद्वयमानेन वर्तुलाकारं स्थूलशिरोभागयुतं सुवर्तुलं स्रुवं निर्माय, तस्य मुखप्रदेशे पङ्कमध्यगतमृगपदाकारं कर्षमात्रग्राहि खातं कृत्वा तदधस्त्वेकांशमानेन प्राग्वत् कङ्कणानि तदधोंऽशचतुष्टये कुम्भं तत एकांशेन पुनः कङ्कणानि तत एकादशांशमानं चतुरंशमानदैर्घ्यसूत्रवेष्टन-योग्यस्थलं कृत्वा पुनरेकांशेन ततोंऽशत्रयेण कुम्भं पुनरेकांशेन कङ्कणानि च कुर्यादिति स्रुवनिर्माणप्रकारः। एवं स्वर्णरौप्यताम्रमयौ वा स्रुक्स्रुवौ कार्यौ। स्रुवाभावे पालाशस्य मध्यपत्रद्वयं पिप्पलदलद्वयं वा होमे ग्राह्यं, संस्कारोऽपि स्रुक्स्रुवयोरिव पत्रयोरपि कार्यः।

स्रुक्-स्रुव रचना-प्रकार उत्तरतन्त्र में कहा गया है कि शीशम, श्रीपर्णी, खैर, आम, श्वेत-रक्त चन्दन, पलाश, वट, विकङ्कत, शमी, बेल, गूलर, पलाश, नागकेसर, बकुल, अशोक, पुन्नाग, पाकड़, वट एवं चम्पक की लकड़ी का स्रुक्-स्रुव बनाना चाहिये। शारदातिलक में कहा गया है कि श्रीपर्णी, शिशम या दूध वाले वृक्ष में से किसी एक की एक हाथ लम्बी लकड़ी लेकर विद्वान् उसे छत्तीस भागों में विभाजित करे। बीस अंश का दण्ड, आठ अंश की वेदी, एक अंश का कण्ठ एवं सात अंश का मुख बनाये। वेदी के तीन अंश का कण्ठ होता है। अग्रभाग कण्ठ के समान होता है एवं उसके मुख में मार्ग कल्पित कर वेदी के मध्य में कनिष्ठा अंगुली की मोटाई के बराबर घी निकलने के लिये छेद बनाये। एक अंश की कर्णिका बनाये, उसके बाहर एक अंश का नाभिकमल बनाये। तीन भाग का गड्ढा बनाये एवं उसके बाहर अर्द्धवृत्त की गोलाई बनाये, उसके सभी ओर एक-एक अंश से अष्टदल कमल बनाये। वेदी के मुख के चारों ओर आधे अंश से मेखला बनाये। दण्डमूल में और अग्रभाग में क्रमशः तीन-चार अंगुल का कुम्भ बनाये, यमांश के कंकण की आकृति बनाये। इस ही दण्ड का आनाह कहते हैं। वेदी के पीठ-भाग में छः अंश से कूर्म बनाये। हंस या हाथी या सूकरमुख के समान मुख बनाये। इसके मुख के पृष्ठ भाग का वर्णन किया गया। अब स्रुव का लक्षण कहते हैं। स्रुच के चौबीसवें भाग से स्रुव बनाये। इसका दण्ड बीस अंश का होता है। चार अंश का आनाह होता है। एक कर्ष आज्य ग्रहण करने वाला उसका शिर होता है। दो अंश में करने वाला मृगपद की आकृति बनाये। दण्डमूल और अग्रभाग में गण्डों में कङ्कण को भूषित बनाये। स्रुक् एवं स्रुव अभाव में अगस्त्य के अनुसार संक्षिप्त हवन में निश्छिद्र पलाशपत्र से सुन्दर स्रुक् स्रुवा बनाये अथवा पीपल के पत्तों का स्रुक्-स्रुवा बनाये। स्रुक्-स्रुवा के निर्माण की रीति इस प्रकार है—शीशम, पीपल, श्रीपर्णी, खैर, आम, चन्दन, लाल चन्दन, देवदार, विकङ्कत, शमी, पलाश, गूलर, बेल, कटहल, बकुल, अशोक, नागकेशर, पुन्नाग, चम्पक, वटवृक्ष आदि की सूखी, व्रण-रहित, अशीर्ण, घुणादि से रहित उद्दिष्ट मान से अधिक मोटी लम्बी लकड़ी मुट्ठी अंगुल मान से चौबीस अंगुल की लाकर उसे छत्तीस भागों में विभाजित करे। उसके बीस अंश से दण्डार्ध बनाये। शेष सोलह अंश के अग्रभाग में से आठ अंश का मुख कल्पित करे, शेष आठ भाग से वेदी बनाये। वेदी के मध्य में चिह्न लगाये। उस चिह्न को केन्द्र मानकर वेदी के अर्धमान से वृत्त बनाये, उसके बाहर अर्धांश मान से एक वृत्त बनाये। उसके बाहर एक अंश मान से एक और वृत्त बनाये। वृत्तों के अन्तराल में तीन भाग वृत्ताकार कर्णिका बनाये। उसके बाहर अर्धांश मान से वृत्त बनाये। उसके बाहर भी अर्धांश मान से वृत्त बनाये। वृत्तों के अन्तराल में अष्टदल बनाये। उसके बाहर अर्धांश मान से सुन्दर सब आकृति की शोभा बनाये।

अवशिष्ट अंश में वेदी के तृतीयांश से दोनों पार्श्वों के खण्डन के साथ मध्य में कण्ठ बनाये। अवशिष्ट उच्च भाग के सात अंश कण्ठसमान विस्तृत समतल नीचे की ओर क्रमशः क्षीयमाण विस्तार बनाये। मुख में भी वेदीवत् मेखला कल्पित करके कण्ठ के नीचे मेखला को भेदित करते हुये प्रणालिकाकार एकांश मान निम्न कनिष्ठा अंगुलि के प्रवेशयोग्य खात करे। कर्णिका-मध्यस्थ खात के मध्य से मुख-मध्यस्थ प्रणालिकाकार खात मध्य से जैसे घृत निकलता है, उसी तरह तप्त तप्त लौह शलाका से वेदी के कण्ठ की परिधि का भेदन कर छिद्र बनाये, उसके आगे भी मुखपरिधि का भेदन करके घी निकलने के लिये कनिष्ठा के प्रवेशयोग्य छेद करे। तब वेदी के कूर्माकार पीठ में कुछ समतल भूमि निश्चल बैठने लायक बनाये। मुख के पृष्ठ भाग के मध्य में कुछ नीचा करे। मुखरन्ध्र के नीचे से उच्च भाग हंसमुखाकार या गजमुखाकार या वाराह, मुखाकार सुरम्य बनाये। दण्ड के आगे वेधके एक अङ्ग में कङ्कणाकार तीन या चार करके उसके चार अर्धांश से मुख-कण्ठ-मध्य-मूल आदि से सुशोभित ऊर्ध्वमुख बनाये। उसके नीचे फिर एकांश से पूर्ववत् कङ्कण बनाये। उसके नीचे नवांश मान से वर्तुल

षडंश मान दीर्घ सूत्र से वेष्टन योग्य स्थान दण्डमध्य में बनाये। उसके नीचे पुनः एकांश से कङ्कण बनाये। उसके अधोशंशद्वय में पूर्ववत् ऊर्ध्व मुख कुम्भ बनाये उसके नीचे पुनः एकांश से कङ्कण बनाये। इस प्रकार स्रुच का निर्माण करके स्रुव के छत्तीस भागों में से चौबीस भाग दीर्घ अग्र दो अंशमान से वर्तुलाकार स्थूल शिरभागयुत सुन्दर गोल स्रुव बनाये। उसके मुखप्रदेश में पङ्कमध्यगत मृग पदाकार कर्षमात्र ग्रहण-योग्य स्थान करे उसके नीचे एकांश मान से पूर्ववत् कङ्कण बनाये। चार अर्धांश में कुम्भ तब एकांश से कङ्कण बनाये। एकादशांश मान की चतुरंश मान दीर्घ सूत्र वेष्टनयोग्य स्थल बनाये। तब एकांश मान से कङ्कण, तब तीन अंश में कुम्भ पुनः एक अंश में कङ्कण बनाये। इस प्रकार स्रुव का निर्माण किया जाता है।

इसी प्रकार सोने, चाँदी या ताम्बा का भी स्रुक् स्रुव बनाये। स्रुवा के अभाव में पलाश के दो पत्तों या पीपल के दो पत्तों से हवन करे। स्रुक्-स्रुव के समान ही पत्ता का भी संस्कार करे।

होमद्रव्याणां प्रमाणानि

अथ होमद्रव्यप्रमाणानि, तत्र शारदायाम् -

कर्षमात्रं घृतं होमे शुक्तिमात्रं पयः स्मृतम्। उक्तानि पञ्चगव्यानि तत्समानि मनीषिभिः ॥१॥
तत्समं मधुदुग्धान्नमक्षमात्रमुदाहृतम्। दधि प्रसृतिमात्रं स्याल्लाजाः स्युर्मुष्टिसम्मिताः ॥२॥
पृथुकास्तत्प्रमाणाः स्युः सक्तवोऽपि तथोदिताः। गुडं पलार्धमानं स्याच्छर्करापि तथा स्मृता ॥३॥
ग्रासार्धं चरुमानं स्यादिक्षुः पर्वावधिः स्मृतः। एकैकं पत्रपुष्पाणि तथापूपानि कल्पयेत् ॥४॥
कदलीनागरङ्गाणां फलान्येकैकशो विदुः। मातुलुङ्गं चतुः खण्डं पनसं दशधाकृतम् ॥५॥
अष्टधा नारिकेलानि खण्डितानि विदुर्बुधाः। त्रिधाकृतं बिल्वफलं कपित्थं खण्डितं द्विधा ॥६॥
उर्वारुकफलं होमे कथितं खण्डितं त्रिधा। फलान्यन्यान्यखण्डानि समिधः स्युर्दशाङ्गुलाः ॥७॥
दूर्वात्रयं समुद्दिष्टं गुडूची चतुरङ्गुला। व्रीहयो मुष्टिमात्राः स्युर्मुद्गमाषयवा अपि ॥८॥
तण्डुलाः स्युस्तदर्धांशाः कोद्रवा मुष्टिसम्मिताः। गोधूमा रक्तकलमा विहिता मुष्टिमानतः ॥९॥
तिलाश्चुलुकमात्राः स्युः सर्षपास्तत्प्रमाणकाः। शुक्तिप्रमाणं लवणं मरिचान्यपि विंशतिः ॥१०॥
पुरं बदरमानं स्याद्रामठं तत्समं स्मृतम्। चन्दनागुरुकर्पूरकस्तूरीकुङ्कुमानि च ॥११॥
तिन्तिणीबीजमानानि समुद्दिष्टानि देशिकैः। इति।

उत्तरतन्त्रे—'पायसं चाक्षसंमितम्' इति। कर्षलक्षणं तत्रैव 'माषो दश गुञ्जाः स्यात् षोडशमाषो निगद्यते कर्षः' इति। तैलस्याप्येतदेव परिमाणम्। शुक्तिः कर्षद्वयम्, प्रसृतिमात्रं पलद्वयमात्रं, मुष्टिः पलं, पलार्धं कर्षद्वयं, ग्रासार्धम् अशीतिरक्तिकामितम्। कुलमूलावतारे—

गुञ्जाभिर्दशभिर्माषः शाणो माषचतुष्टयम्। द्वौ शाणौ धटकः कोलो बदरं द्रङ्क्षणश्च सः ॥१॥
तौ द्वौ पाणितलं कर्षः सुवर्णं कवलग्रहः। पिचुर्बिडालपदकं तिन्दुकोऽक्षश्च तद्द्वयम् ॥२॥
शुक्तिरष्टाम्बिका ते द्वे पलं बिल्वचतुर्थिका। मुष्टिराम्रं प्रगुञ्जोऽथ द्वे पले प्रसृतिस्तथा ॥३॥ इति

मातुलुङ्गं बीजपूरम्। उर्वारुकं कर्कटी। तदर्धांशाः शुक्तिमिताः। चुलुकमात्राः पाणितलप्रमाणाः, कर्षमात्रा इत्यर्थः। अक्षसम्मितं कर्षद्वयमात्रम्। पुरं गुग्गुलः। बदरमानमशीतिगुञ्जामितम्। रामठं हिंगुः। नारदपञ्चरात्रे – 'तृतीयं खण्डं मूलानां ह्रस्वानि स्वप्रमाणतः' इति। शैवागमेऽपि—'खण्डत्रयं स्यान्मूलानां सूक्ष्माण्येवं च होमयेत्।' एवं केवलमखण्डमिति यावत्। 'कन्दानामष्टमं भागं लतानामङ्गुलद्वयम्' इति।

होमद्रव्य-प्रमाण—शारदातिलक में कहा गया है कि होम में कर्ष मात्र = १६ ग्राम घृत एवं दूध शुक्ति मात्र = ३२ ग्राम लगता है। इन्हीं के समान पञ्चगव्य भी मनीषियों के द्वारा कहा गया है। उसी के समान मधु-दूध एवं दो कर्ष अन्न लगता है। दही एक अंजुली और मुट्ठी भर लावा की आहुति होती है। पृथुक और सत्तू भी उसी के समान होता है। गुड़ और

शक्कर एक छटाक या पल = ६० ग्राम होते हैं। यह आधा कौर और ईख का एक पोर लगता है। एक-एक फूल और पूआ की आहुति कल्पित करें। केला-नारङ्गी के एक-एक फल की आहुति होती है। मातुलुङ्ग का चौथाई भाग, कटहल का दशवाँ भाग आहुति होता है। नारियल का आठवाँ भाग, बेल का तीसरा भाग एवं कपित्थ का दूसरा भाग आहुति होता है। उर्वारुक के तीसरे भाग की आहुति होती है। अन्य फलों के आहुति सम्पूर्ण की ही होती है। दश अंगुल की समिधा होती है। तीन दूर्वा और चार अंगुल लम्बा गुरुच की आहुति होती है। धान, मूंग, उड़द की मुट्ठी भर की आहुति होती है। चावल आधी मुट्ठी, कोदो मुट्ठी भर, गेहूँ, रक्त धान्य की आहुति मुट्ठी भर होती है। तिल चुल्लू भर और सरसों भी चुल्लू भर, शुक्ति प्रमाण नमक और बीस मरीच की आहुति होती है। गुग्गुल एक अंजुली और हिंग भी इतना ही एक आहुति में होता है। चन्दन, अगर, कपूर, कस्तूरी, कुङ्कुम की आहुति इमली के बीज के बराबर होती है। कुलमूलावतार में कहा गया है कि दश गुंजा अर्थात् दश रत्ती लगभग = एक ग्राम उड़द, चार शाण = सोलह ग्राम उड़द, आठ ग्राम कक्कोल, आठ ग्राम बेर, दो अंजुली भर एक कौर पिचु, विडालपदक और निन्दु दो कर्ष, चौथाई बेल, आम मुट्ठी भर एवं प्रगुंजा दो पल की आहुति होती है।

समिधः

अथ समिधः। तत्र नारदपञ्चरात्रे—

समित्प्रादेशमात्रेण समच्छेदान्विता तथा। विशीर्णा द्विदला ह्रस्वा वक्राः स्थूलाः कृशा द्विधा ॥१॥
क्रिमिदष्टाश्च दीर्घाश्च निस्त्वचः परिवर्जिताः। विशीर्णायुःक्षयं कुर्याद् द्विदला व्याधिसम्भवा ॥२॥
ह्रस्वायां मृत्युमाप्नोति वक्रा विघ्नकरी मता। स्थूलाभिर्हरते लक्ष्मीं कृशायां जायते क्षयः ॥३॥
द्विधायां नेत्रदोषाः स्युः कीटदष्टार्थनाशिनी। द्वेषं प्रकुरुते दीर्घा प्राणघ्नो निस्त्वचः कृताः ॥४॥
सक्षीरा नाधिकान्यूनाः समिधः सर्वकामदाः। आर्द्रत्वचं समच्छेदा अङ्गुलवर्तुलाम् ॥५॥
ईदृशीं होमयेत्प्राज्ञः प्राप्नोति विपुलां श्रियम्। श्रौते स्मार्ते च तन्त्रोक्ते समिधः परिकीर्तिताः ॥६॥ इति।

तथा वायवीयसंहितायाम्—

ताः पालाश्यः परा वापि यज्ञिया द्वादशाङ्गुलाः। अवक्रा न स्वयं शुष्काः सत्वचो निर्व्रणाः समाः ॥१॥
दशाङ्गुला वा विहिताः कनिष्ठाङ्गुलसम्मिताः। प्रादेशमात्रा वालाभे होतव्याः सकला अपि ॥२॥ इति।

समिधा—नारदपञ्चरात्र में कहा गया है कि एक बित्ता लम्बी, बराबर एवं छिद्ररहित समिधा होती है। विशीर्ण, द्विशाखी, टेढ़ी, मोटी, पतली, जुड़ी हुई, क्रिमिदष्ट, दीर्घ एवं छालरहित समिधा वर्जित है। विशीर्ण अर्थात् सड़ी हुई समिधा आयु का क्षय करती है। द्विशाखी समिधा से व्याधि होती है। छोटी से मृत्यु होती है। टेढ़ी से विघ्न होते हैं। मोटी लक्ष्मी का नाश करती है। पतली से क्षय होता है। दो सटी हुई समिधा से नेत्रदोष होता है। कीड़ा लगी हुई समिधा धननाशिनी होती है। लम्बी से द्वेष होता है। बिना छाल वाली समिधा प्राणघातिनी होती है। दूध वाली, न ज्यादा लम्बी और न ज्यादा छोटी समिधा सर्वकामदायिनी होती है। आर्द्र त्वचा, बराबर लम्बाई एवं एक अंगुल गोल समिधा से हवन करने पर विद्वान् विपुल श्री को प्राप्त करता है। श्रौत एवं स्मार्त तन्त्रोक्त समिधा इसी प्रकार की होती है।

वायवीय संहिता में कहा गया है कि पलाश या अन्य यज्ञीय काष्ठों की समिधा बारह अंगुल लम्बी, सीधी, गीली, छाल वाली, छिद्ररहित, बराबर लम्बाई वाली समिधा प्रशस्त होती है अथवा दश अंगुल लम्बी, कनिष्ठा अंगुलि के बराबर मोटी समिधा श्रेष्ठ होती है। एक बित्ते की समिधा से भी हवन करना चाहिये।

वर्णदीक्षाप्रयोगः

अथ प्रकृते क्रियादीक्षाशक्तानां वर्णदीक्षादिविधिर्लिख्यते—तत्र पुंप्रकृत्यात्मकानकारादिक्षकारान्तान् मातृकावर्णान् पुंप्रकृत्यात्मके शिष्यदेहे यथाविधि विन्यस्य, पुनः संहारक्रमेण मूर्धादिहृदयान्तस्थं क्षकारं नाभ्यन्तस्थळकारे संहरामि, हृदादिनाभिपर्यन्तास्थळकारं हृदादिवामपादाग्रस्थे हकारे संहरामि, हृदादिवामपादाग्रपर्यन्तस्थं हकारं

हृदादिदक्षिणपादाग्रपर्यन्तस्थे सकारे संहरामि, हृदादिदक्षिणपादाग्रपर्यन्तस्थं सकारं हृदादिवामपाण्यग्नावधिस्थे षकारे संहरामि, हृदादिवामपाण्यग्रावधिस्थं षकारं हृदादिदक्षिणपाण्यग्रावधिस्थे शकारे संहरामि, एवं युक्त्या शकारं वकारे संहरामीत्यादि, मुखवृत्तस्थमाकारं शिरःस्थे अकारे संहरामि, एवं युक्त्या वर्णान् संहृत्य, पुनस्तच्चैतन्यं सकलतत्त्वग्रामसमेतं परमात्मनि संयोज्य विलीनसकलतत्त्वसमूहं विगतनिखिलकलुषं दिव्यतनुं शिष्यं विचिन्त्य, पुनः परमात्मनः सकाशादकारादिक्षकारान्तान् वर्णानुत्पाद्य वक्ष्यमाणसृष्टिन्यासक्रमेण शिष्यदेहे मातृकावर्णान् विन्यस्य, पुनस्तच्चैतन्यं तत्त्वग्रामसमेतं तस्मिन् संयोज्योक्तविधिनोपदेशं कुर्यात्। इति वर्णात्मदीक्षा।

वर्णदीक्षाप्रयोग—क्रियादीक्षा में असमर्थों के लिये वर्णदीक्षा की विधि इस प्रकार है—पुरुष प्रकृत्यात्मक अकार से क्षकार तक के मातृका वर्ण को पुरुषप्रकृत्यात्मक शिष्य के देह में यथाविधि न्यस्त करें। पुनः संहारक्रम से 'मूर्धादिहृदयान्तस्थं क्षकारं नाभ्यन्तस्थळकारे संहरामि, हृदयादिनाभिपर्यन्तस्थळकारं हृदयादिवामपादाग्रस्थे हकारे संहरामि, हृदादिवामपादाग्रपर्यन्तस्थं हकारं हृदादिदक्षिणपादाग्रपर्यन्तस्थे सकारे संहरामि, हृदादिदक्षिणपादाग्रपर्यन्तस्थं सकारं हृदादिवामपाण्यग्नावधिस्थे षकारे संहरामि, हृदादिवामपाण्यग्रावधिस्थं षकारं हृदादिदक्षिणपाण्यग्रावधिस्थे शकारे संहरामि। इसी प्रकार शकारं वकारे संहरामि, मुखवृत्तस्थमाकारं शिरस्थे अकारे संहरामि—इस प्रकार वर्णों का संहार करके पुनः उस चैतन्य सकल तत्त्वग्राम समेत को परमात्मा में जोड़कर विलीन सकल तत्त्वसमूह, विगत निखिल कलुष, दिव्य तनुरूप शिष्य का चिन्तन करे। पुनः परमात्मा में अ से क्ष तक वर्णों को उत्पन्न करके वक्ष्यमाण सृष्टि न्यास क्रम से शिष्य के देह में मातृका वर्णों का न्यास करे। पुनः तत्त्वग्रामसमेत चैतन्य उस शिष्य में संयोजित करके उपदेश करे।

कलादीक्षाप्रयोगः

अथ कलादीक्षा—तत्र पादतलतो जानुपर्यन्तं निवृत्तिकलां, जानुतो नाभिपर्यन्तं प्रतिष्ठाकलां, नाभितः कण्ठपर्यन्तं विद्याकलां, कण्ठतो ललाटपर्यन्तं शान्तिकलां, ललाटात् ब्रह्मरन्ध्रपर्यन्तं शान्त्यतीताकलां च शिष्यदेहे सञ्चिन्त्य, निवृत्तिकलां प्रतिष्ठाकलायां संहरामि, प्रतिष्ठाकलां विद्याकलायां संहरामि, विद्याकलां शान्तिकलायां संहरामि, शान्तिकलां शान्त्यतीताकलायां संहरामि, इति क्रमात् संहृत्य वेधयित्वा, तां परमात्मनि संहृत्य प्राग्वत्तस्य शरीरं संशोध्य समुत्पाद्य, परमात्मनः सकाशाच्छान्त्यतीताकलां ततः शान्तिं ततो विद्यां ततः प्रतिष्ठां ततो निवृत्तिं च सृष्टिक्रमेण शिष्यदेहे तत्तत्स्थाने संयोज्योपदेशादिकं कुर्यादिति। एवमष्टात्रिंशत्कलाभिर्वोक्तयुक्त्या संहारसृष्टिन्यासक्रमेण शिष्यं संस्कृत्य दीक्षां दद्यात्। इति कलादीक्षा।

कला दीक्षा—पादतल से घुटनों तक निवृत्ति कला, जानु से नाभि तक प्रतिष्ठा कला, नाभि से कण्ठ तक विद्या कला, कण्ठ से ललाट तक शान्ति कला, ललाट से ब्रह्मरन्ध्र तक शान्त्यतीता कला का न्यास शिष्य के देह में करे। निवृत्तिकलां प्रतिष्ठाकलायां संहरामि, प्रतिष्ठाकलां विद्याकलायां संहरामि, विद्याकलां शान्तिकलायां संहरामि, शान्तिकलां शान्त्यतीताकलायां संहरामि इसी क्रम से संहार करके वेध करे। उन्हें परमात्मा में संहृत करके पूर्ववत् शिष्य के शरीर का शोधन करके उत्पन्न करके परमात्मा के समीप से शान्त्यतीता कला, उससे शान्ति, उससे विद्या, उससे प्रतिष्ठा, उससे निवृत्ति कला को सृष्टिक्रम से शिष्य देह में उनके स्थानों में संयोजित करे। इसी प्रकार छत्तीस कला को उक्त युक्ति से संहार-सृष्टि न्यासक्रम से शिष्य के दिव्य देह में संयोजित करके उपदेशादि करे, दीक्षा दे।

स्पर्श-वाग्-दृग्-वेधदीक्षाप्रकारः

अथ स्पर्शदीक्षा—तत्र गुरुः स्वहस्ततले शिवरूपं स्वगुरुं ध्यायन् मूलविद्यां षडङ्गमातृकां च जपन् शिष्यस्य शिरसि स्वदक्षिणकरं निधायोपदिशेत्। इति स्पर्शदीक्षा।

अथ वाग्दीक्षा—तत्र गुरुः परचिद्रूपे शिवे चित्तं निधाय तदुद्भूतान् समस्तमन्त्रान् ध्यायंस्तन्मनाः स्वयं शिष्यायोपदिशेन्मन्त्रान्। इति वाग्दीक्षा।

अथ दृग्दीक्षा—तत्र गुरुः स्वनेत्रे निमील्य परमात्मस्वरूपिणीं देवतां ध्यात्वा प्रसन्नचित्तो दिव्यचक्षुषा शिष्यं निरीक्ष्य मन्त्रोपदेशं कुर्यात्, इति दृग्दीक्षा। पश्चादुक्तमेतत् दीक्षात्रयं विरक्तानां शिष्याणां तत्त्वविदा गुरुणा कार्यमिति। स्त्रीणां तु वाग्दीक्षैव विहिता नान्या।

अथ वेधदीक्षा—तत्र गुरुः शिष्यस्य मूलाधारे चतुर्दलपङ्कजमध्यत्रिकोणमध्ये यथोक्तरूपां कुण्डलिनीं ध्यात्वा तत्पत्रचतुष्टयमध्यस्थवादिसान्ताक्षरचतुष्टयं तन्मध्यस्थिते कमलासने संहृत्य, तं ब्रह्माणं तदूर्ध्वगतस्वाधिष्ठानाख्यषट्पत्रकमलमध्यस्थिते विष्णौ संयोज्य वेधयित्वा, तत्पत्रषट्कमध्यस्थबादिलान्तवर्णषट्कं विष्णौ संयोज्य, तदूर्ध्वे नाभिमण्डले दशदलकमलात्मके मणिपूराख्ये विष्णुं संयोज्य, तत्पत्रदशकमध्यस्थडादिफान्तवर्णदशकसहितं विष्णुं तत्पङ्कजमध्यस्थे रुद्रे संयोज्य वेधयित्वा, तं रुद्रमनाहताख्ये हृत्पद्मे कादिठान्तद्वादशवर्णाढ्यद्वादशदलसंयुक्ते संयोज्य, तैरक्षरैः सार्धं तं रुद्रं तन्मध्यस्थितेश्वरे संयोज्य वेधयित्वा, कण्ठदेशे षोडशस्वराढ्यषोडशदलकमले विशुद्धचक्रे तमीश्वरं संयोज्य, तैः स्वरैः सार्धं ईश्वरं तन्मध्यस्थे सदाशिवे संयोज्य वेधयित्वा, तं सदाशिवं भ्रूमध्यद्विदलपङ्कजमाज्ञाचक्रं नीत्वा तत्पत्रद्वयहक्षवर्णद्वयसहितं सदाशिवं तन्मध्यवर्तिनि बिन्दौ संयोज्य वेधयित्वा, तं बिन्दुं तदूर्ध्वस्थितायां कलायां संयोज्य, तां पुनर्नादे तं नादान्ते तमुन्मन्यां तां विषुचक्रे विषुचक्रं गुरुवक्त्रे चेत्युत्तरोत्तरं संयोज्य वेधयित्वा, जीवात्मना सह तां कुण्डलिनीं परशिवे संयोज्य वेधयेत्। एवं कृते शिष्यो गुर्वाज्ञया छिन्नसंसारपाशो विसंज्ञः सद्यः क्षितितले पतति। ततो गुरुः संहृतविपरीतक्रमेण परशिवात् कुण्डलिनीमुत्पाद्य तया हृतमखिलं सृष्टिक्रमेण शिष्यदेहे तत्तच्चक्रे तां तां देवतां संयोज्य, हृदये जीवं, मूलाधारे कुण्डलिनीं संयोज्योपदेशादिकं कुर्यात्। ततः संजातदिव्यबोधो भूतभविष्यद्वर्तमानज्ञः सदाशिवो भवति, इति वेधदीक्षा। प्रायः कलौ वेधदीक्षाकरो गुरुस्तद्योग्यः शिष्यश्च दुर्लभ इत्याहुराचार्याः। प्रसङ्गादत्रापि लिखितेयमिति शिवम्।

स्पर्श दीक्षा—गुरु अपने करतल मे शिवरूप स्वगुरु का ध्यान करके मूल विद्या, षडङ्ग मातृका जप कर शिष्य के शिर पर अपना दाहिना हाथ रखकर उपदेश करे।

वाग्दीक्षा—गुरु परचिद् रूप शिव मे चित्त को लगाकर उससे उत्पन्न सभी मन्त्रो का ध्यान करके स्वयं तत्स्वरूप होकर शिष्य को मन्त्रोपदेश करे।

दृग्दीक्षा—गुरु अपनी आंखो को मूंद कर परमात्मस्वरूप देवता का ध्यान करके प्रसन्न चित्त होकर दिव्य दृष्टि से शिष्य का निरीक्षण करके मन्त्रोपदेश करे।

इसके बाद उक्त दीक्षात्रय से विरक्त शिष्यों को तत्त्वविद् गुरु दीक्षा प्रदान करे। स्त्रियों के लिये केवल वाग्दीक्षा ही विहित है।

वेधदीक्षा—गुरु शिष्य के मूलाधार में चर्तुदल कमल मध्यस्थ त्रिकोण में यथोक्तरूपा कुण्डलिनी का ध्यान करे। उसके चार दलों में स्थित वादि सान्त अक्षरचतुष्टय को उसमें स्थित कमलासन मे विलीन करे। उसमे स्थित ब्रह्मा को उसके ऊपर स्थित स्वाधिष्ठान नामक षड्दल कमल-स्थित विष्णु से संयोजित करके वेध करे। उस कमल के छः दलों में स्थित बादि लान्त छः वर्णो को विष्णु से संयोजित करे। उसके ऊपर नाभिमण्डल में दश दलात्मक मणिपूर मे विष्णु से योजित करे। उसके दश दलों मे स्थित डादि फान्त वर्णदशक-सहित विष्णु को उस पंकज मे स्थित रुद्र से संयोजित करके वेध करे। रुद्र को अनाहत नामक हृदयकमल मे कादि ठान्त द्वादश वर्ण द्वादश दल संयुक्त में योजित करे। उसके अक्षरो को उसमे स्थित ईश्वर से जोड़कर वेध करे। कण्ठ देश मे सोलह स्वरयुक्त षोडश दल कमल विशुद्धि चक्र मे ईश्वर को योजित करे। उन स्वरो के साथ ईश्वर को उसमे स्थित सदाशिव के साथ जोड़कर वेध करे। उस सदाशिव को भ्रूमध्य द्विदल कमल आज्ञा चक्र में लाकर उसके पत्रद्वय मे स्थित हंक्षद्वय-सहित सदाशिव को उसके मध्य स्थित बिन्दु से जोड़कर वेध करे। उस बिन्दु को उसके ऊपर स्थित कला में जोड़े। कला को नाद मे, नाद को नादान्त मे, नादान्त को उन्मनी मे, उन्मनी को विषुचक्र मे स्थित गुरुमुख

में जोड़कर वेध करे। जीवात्मा-सहित उसे कुण्डलिनी परशिव में जोड़कर वेध करे। इससे शिष्य गुरु की आज्ञा से छिन्न संसारपाश एवं विसंज्ञ होकर तुरन्त भूमि पर गिर पड़ता है। तब गुरु विपरीत क्रम से संहार करके परशिव से कुण्डलिनी को उत्पन्न करके उससे संहृत सभी को सृष्टि क्रम से शिष्य-देह में स्थित चक्रों में उन-उन देवताओं को संयोजित करके हृदय में जीव एवं मूलाधार में कुण्डलिनी को जोड़कर उपदेशादि करे। इससे शिष्य दिव्य देह का होकर त्रिकालज्ञ सदाशिव हो जाता है। यही वेधदीक्षा होती है। कलियुग में वेध दीक्षा देने वाले गुरु और उसके योग्य शिष्य दुर्लभ हैं—यह आचार्यों का मत है। प्रसङ्गवश ही यहाँ इसका उल्लेख किया गया है।

पूर्णाभिषेकप्रकारः

अथैवं दीक्षितानां सद्भक्तियुक्तानां गुरुतः शास्त्रतश्चाधिगताशेषरहस्यपरमार्थानां गुरुः शिष्याणां पूर्णाभिषेकाख्यं द्वितीयमभिषेकं कुर्यात्। तत्र प्रागुक्ते मण्डपे वेदिकायां वक्ष्यमाणं विपुलं तत्पूजाचक्रं निर्माय, प्राग्वत् पञ्चरजोभिः कर्णिकादलकेसरकोणादिकमापूर्य, तस्य मध्ये खारीतोयपूर्णकुम्भं प्रागुक्तविधिना संस्थाप्यान्येषु दलेषु कोणेषु चतुरस्रेषु च सर्वावरणदेवतापूजास्थानेषु प्रस्थद्वयजलपूर्णकलशान् संस्थाप्य, तत्र मध्यकुम्भे देवतामावाह्य प्रागुक्तविधिना षोडशोपचारैः सम्पूज्यान्येषु कलशेषु तथैवाङ्गावरणदेवताः सम्पूज्य दीक्षोक्तविधिना शिष्यजन्मनक्षत्रे प्राग्वत् पञ्च-वाद्यघोषपुरःसरं स्वेष्टदेवताभक्तैर्ब्राह्मणैः सह तं सम्यगभिषिञ्चेत्। ततः शिष्योऽपि प्राग्वत् श्रीगुरुं प्रणम्य दक्षिणादिकं दत्त्वा ब्राह्मणान् भूरिदक्षिणादिभिः सन्तोषयेदिति पूर्णाभिषेकविधिः।

पूर्णाभिषेकहीनो यः साधको म्रियते यदि। पिशाचत्वमवाप्नोति नरकं च प्रपद्यते ॥१॥

इति कुलार्णववचनादावश्यकोऽयमभिषेकः।

इति श्रीमहामहोपाध्यायभगवत्पूज्यपाद-श्रीगोविन्दाचार्यशिष्य-श्रीभगवच्छङ्कराचार्यशिष्य-श्रीविष्णुशर्माचार्यशिष्य-श्रीप्रगल्भाचार्यशिष्य-श्रीविद्यारण्ययतिविरचिते श्रीविद्यार्णवाख्ये तन्त्रे त्रयोदशः श्वासः॥१३॥

●

पूर्णाभिषेक-प्रकार—इस प्रकार से दीक्षित सद्भक्तियुक्त गुरु से शास्त्र से प्राप्त अशेष रहस्य परमार्थ शिष्य का गुरु पूर्णाभिषेक नामक द्वितीय अभिषेक करे। पूर्वोक्त मण्डप में वेदि पर विपुल पूजाचक्र बनाकर पूर्ववत् पाँच चूर्णों से कर्णिकादल, केसर, कोणादि को पूरित करके उसके मध्य में खारी-तोयपूर्ण कुम्भ पूर्वोक्त विधि से स्थापित करे दलों में, कोणों में एवं चतुरस्र में, सर्वावरण देवता पूजास्थानों में प्रस्थद्वय जलपूर्ण कलश स्थापित करे। मध्य कुम्भ में देवता का आवाहन करे। पूर्वोक्त विधि से षोडशोपचार पूजा करे। अन्य कलशों में अङ्गावरण देवता की पूजा करे। दीक्षोक्त विधि से शिष्य के जन्मनक्षत्र में पूर्वोक्त पञ्च वाद्यघोषपूर्वक स्वेष्ट देवता के भक्त ब्राह्मणों सहित शिष्य का अभिषेक करे। तब शिष्य भी पूर्ववत् गुरु को प्रणाम करे एवं दक्षिणादि प्रदान करे। ब्राह्मणों को प्रभूत दक्षिणा देकर सन्तुष्ट करे। कुलार्णव के अनुसार यह अभिषेक आवश्यक होता है। पूर्णाभिषेक-विहीन साधक यदि मृत्यु को प्राप्त करता है तो वह पिशाचत्व को प्राप्त करके नरक में जाता है।

इस प्रकार श्रीविद्यारण्ययतिविरचित श्रीविद्यार्णव तन्त्र के कपिलदेव नारायण-कृत भाषा-भाष्य में त्रयोदश श्वास पूर्ण हुआ

●